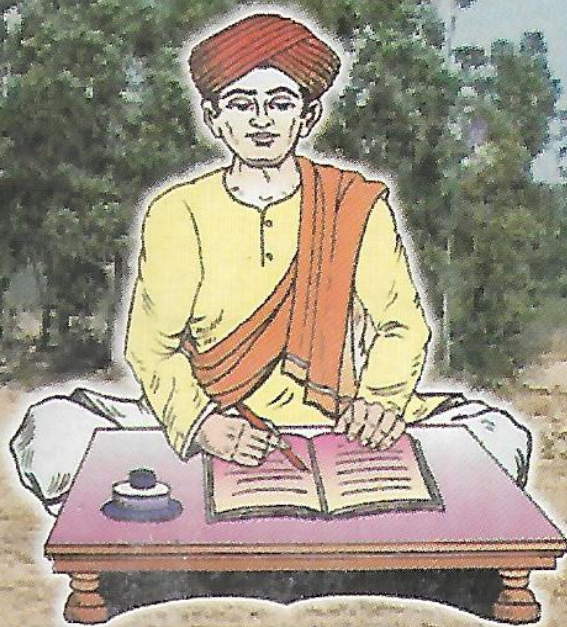


चतुर-चितारणी



- पण्डित दौलतराम कासलीवाल

(भगवान महावीर 26सौ वां जन्म कल्याणक महोत्सव वर्ष)

चतुर-चितारणी

रचयिता :

पण्डित दौलतराम कासलीवाल

सम्पादन व अनुवाद :

डॉ. वीरसागर जैन

व्याख्याता एवं अध्यक्ष, जैनदर्शन विभाग
श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ
(मानित विश्वविद्यालय)
नई दिल्ली-110016

प्रकाशक :

श्री अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् ट्रस्ट

129 जादोन नगर 'बी', स्टेशन रोड़, दुर्गापुरा, जयपुर-302018

☎ 722274, 721819

चतुर-चितारणी

- प्रथम संस्करण : 1000

(22 अप्रेल, 2001)

आचार्यश्री विद्यानन्दजी जन्मजयन्ती

- मूल्य : दस रुपए

- परमसंरक्षक :

श्रीमती इन्दुमती अन्नासाहेब, खेमलापुरे

मु.पो. — घटप्रभा, जिला — बेलगाँव, कर्नाटक

- हितैषी :

पण्डित चुन्नीलाल जैन शास्त्री

(श्रीमती हीराबाई चुन्नीलाल जैन पारमार्थिक ट्रस्ट)

चन्देरी (म.प्र.) एवं स्टेशन रोड दुर्गापुरा, जयपुर

- मुद्रक :

प्रिन्टोमैटिक्स

स्टेशन रोड, दुर्गापुरा, जयपुर

☎ 722274, 721819

समर्पण

परमपूज्य सिद्धान्तचक्रवर्ती

आचार्यश्री विद्यानन्दजी मुनिराज

जिनके पावन उपदेश

प्रेरणा एवं मार्गदर्शन से यह

श्री अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद्

गतिशील संस्था के रूप में

प्रतिष्ठापित हुई है ।

आज उनकी पावन जन्म-जयन्ती

के अवसर पर

विनयांजलि के रूप में

सादर समर्पित ।

प्रकाशकीय

श्री अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित साहित्य प्रकाशन के तृतीय पुष्प के रूप में पण्डित दौलतरामजी कासलीवाल विरचित 'चतुर चितारणी' का प्रकाशन करते हुए हमें हार्दिक प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है।

यह वर्ष भ. महावीर का जन्म कल्याणक महोत्सव वर्ष है। इस उपलक्ष्य में भारत सरकार द्वारा अनेक कार्यक्रम हाथ में लिए गए हैं जो गौरव का विषय है। विद्वत्परिषद् ने भी इस वर्ष २६ पुस्तकों के प्रकाशन का संकल्प लिया है, जो आपके सहयोग से पूरा करना है।

विद्वत् परिषद् ट्रस्ट साहित्य प्रकाशन के क्षेत्र में गतिशील हो तथा महत्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रकाशन निर्बाध रूप से हो, इसके लिए ट्रस्ट ने एक योजना तैयार की है, जिसके अनुसार परमशिरोमणि संरक्षक हेतु ५१०००/- शिरोमणि संरक्षक हेतु ३१०००/- परमसंरक्षक हेतु २१०००/- संरक्षक हेतु १५०००/- सह संरक्षक हेतु ११०००/- तथा हितैषी सदस्य हेतु ५००१/- निर्धारित किए गए हैं। आप सभी उपरोक्तानुसार धनराशि प्रदानकर इस ज्ञानयज्ञ में अपनी आहुति दे सकते हैं।

संस्था को आचार्यश्री विद्यानन्दजी आचार्यश्री धर्मभूषणजी, आचार्यश्री चन्द्रसागरजी, उपाध्याय श्रुतसागरजी जैसे अनेक मुनिराजों एवं डॉ. देवेन्द्रकुमारजी शास्त्री, डॉ. राजारामजी तथा डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल जैसे मनीषियों का वरदहस्त प्रदान है।

पण्डित दौलतरामजी कासलीवाल द्वारा रचित 'चतुर-चितारणी' नामक इस पुस्तक का सम्पादन एवं अनुवाद कार्य डॉ. वीरसागर जैन ने बड़े ही मनोयोगपूर्वक किया है। हम इस ट्रस्ट की ओर से उनका हृदय से आभार मानते हैं।

कविवर दौलतरामजी कासलीवाल की इस कृति के माध्यम से समाज अध्यात्म रसपान करते हुए मुक्ति पथ पर अग्रसर हो, इसी भावना के साथ...

२२ अप्रैल, २००१

- अखिल बंसल

संयोजक, साहित्य प्रकाशन समिति

श्री अ. भा. दि. जैन विद्वत्परिषद् ट्रस्ट

प्रस्तावना

कृति का नाम और उसका अर्थ—

प्रस्तुत कृति का नाम 'चतुर-चितारणी' है, जैसा कि स्वयं कवि ने इसके प्रारम्भ में सूचित किया है—

“जिन आज्ञा सुखदांनि, संसारार्णव तारणी।

ताहि प्रणमि उर आनि, भाषौं चतुर-चितारणी॥ 2॥”

‘चतुर-चितारणी’ नाम अत्यन्त अर्थगर्भित है। आइये, जरा इसे समझने का प्रयत्न करते हैं। ‘चतुर-चितारणी’ — इस पद में दो शब्दों का प्रयोग हुआ है :— 1. चतुर, और 2. चितारणी।

(क) ‘चतुर’ शब्द का अर्थ :— विभिन्न शब्दकोशों¹ में ‘चतुर’ शब्द के अर्थ होशियार, कुशल, मेधावी, तीक्ष्णबुद्धि, तेज, प्रवीण, निपुण, चालाक आदि दिये हैं; अतः लोग, जो लौकिक कार्यों में होशियार हो उसे ही चतुर समझते हैं, परन्तु यह एक आध्यात्मिक कृति है, अतः यहाँ हमें ‘चतुर’ शब्द का आध्यात्मिक अर्थ ग्रहण करना चाहिए।

‘चतुर’ शब्द का प्रयोग आध्यात्मिक ग्रन्थों में अन्यत्र भी अनेक स्थलों पर बहुत हुआ है, जिसका सावधानी से अध्ययन करने पर पता चलता है कि अध्यात्म में ‘चतुर’ सम्यग्दृष्टि जीव को ही कहते हैं, मिथ्यादृष्टि जीव को कदापि नहीं। मिथ्यादृष्टि जीव लौकिक कार्यों में कितना भी कुशल हो, पर अध्यात्म में उसे आत्मज्ञान नहीं होने के कारण मूर्ख ही कहते हैं, चतुर नहीं। उदाहरणार्थ कतिपय निम्नलिखित कथन ध्यानपूर्वक पठनीय हैं—

(i) “वार्तादिभिर्यदि धनं नियतं जनानाम्,
निःस्वः कथं भवति कोऽपि कृषीवलादिः।
ज्ञात्वेति रे मम वचः चतुरास्स्वपुण्ये,
पुण्यैर्विना न हि भवन्ति समीहितार्थाः॥”

—मुनिराज योगीन्दु देव, अमृताशीति, श्लोक 4

1. (क) संस्कृत-हिन्दी-कोश, वामन शिवराम आप्टे (संस्करण 1987 ई०), पृष्ठ 370

(ख) संक्षिप्त हिन्दी-शब्दसागर, रामचन्द्र वर्मा (संस्करण 1987 ई०), पृष्ठ 307

6 : चतुर-चितारणी

भावार्थ :— जो जीव ऐसा मानते हैं कि लौकिक धनादि की प्राप्ति यहाँ-वहाँ भागने-दौड़ने आदि से नहीं, अपितु अपने पुण्य के उदय से ही होती है, वे वास्तव में चतुर हैं।

- (ii) “यह संसार विडम्बना, देखि प्रकट दुख खेद।
चतुर चित्त त्यागी भये, मूढ न जाने भेद॥”

—बनारसीदास, अर्द्धकथानक, छन्द 108

भावार्थ :— जो जीव संसार की विडम्बना को देखकर, उसके दुःख से दुःखी होकर, उससे (संसार से) विरक्त हो जाते हैं, वे ही चतुर हैं। शेष सभी संसार की विडम्बना को नहीं पहचान कर उसी में सतत अनुरक्त रहने वाले जीव मूढ हैं, मिथ्यादृष्टि हैं।

- (iii) “जड़ परगट चेतन गुप्त, दुविधा लखै न कोय।
यह दुविधा सोई लखै, जो सुविचक्षण होय॥”

—बनारसीदास, बनारसी-विलास, अध्यात्म-बत्तीसी 6

भावार्थ :— शरीरादि तो जड़ हैं, प्रकट हैं, परन्तु उसमें चेतन तत्त्व गुप्त हैं। लोग उसे नहीं देख पाते हैं, परन्तु जो उस गुप्त चेतन तत्त्व को देख लेता है, वही सुविचक्षण है — चतुर है।

- (iv) “देखो भाई महाविकल संसारी।.....
हिंसारम्भ करत सुख समुझैं, मृषा बोलि चतुराई॥”

—बनारसीदास, बनारसी-विलास, पृष्ठ 238

भावार्थ :— जो जीव झूठ बोलने में ही चतुराई समझते हैं, वे संसारी हैं— अज्ञानी मिथ्यादृष्टि हैं और महादुःखी हैं।

- (v) “अपनी बड़ाई परनिन्दा मत करै भाई !
यहै चतुराई मद मांस कौ बचाव रे !”

—महाकवि भूधरदास, जैनशतक, छन्द 44

भावार्थ :— जो कभी आत्मप्रशंसा और परनिन्दा नहीं करते एवं मद्य-मांसादि अभक्ष्य-भक्षण से बचकर रहते हैं, वे चतुर हैं।

- (vi) “कहै विचच्छन पुरुष सदा मैं एक हौं।
अपने रससौं भर्यौ आपनी टेक हौं॥
मोहकर्म मम नाँहि नाँहि भ्रमकूप है।
शुद्ध चेतना सिन्धु हमारौ रूप है॥”

—बनारसीदास, समयसार नाटक, जीवद्वार 33

भावार्थ :— जो जीव ऐसा मानता है कि मैं सदा एक हूँ, अपने स्वभाव-रस से

परिपूर्ण हूँ; मोहकर्म किंचित् भी मेरा नहीं है, मेरा स्वरूप तो शुद्ध चेतनामय है; वही विचक्षण पुरुष है — चतुर है।

(ख) 'चितारणी' शब्द का अर्थ :— 'चितारणी' शब्द का अर्थ है— देखना, समझना, मानना, विचार करना, चिन्तन करना आदि। यहाँ ये सभी अर्थ सम्यक् प्रकार से घटित होते हैं। सभी अर्थों का समाहार करते हुए हम इसे इसप्रकार भी कह सकते हैं कि 'चितारणी' शब्द का प्रयोग अविचल श्रद्धान एवं विकल्पात्मक चिन्तन — इन दो अर्थों में होता है और यहाँ ये दोनों ही सम्यक् रूप से ग्राह्य हैं।

इसप्रकार 'चतुर-चितारणी' का अभिप्राय हुआ— सम्यग्दृष्टि ज्ञानी जीवों का श्रद्धान अथवा उनका चिन्तन — उनकी समझ।

प्रस्तुत कृति में सम्यग्दृष्टि ज्ञानी जीवों का श्रद्धान कैसा होता है, अथवा उनका चिन्तन कैसा होता है — इसका भलीभाँति प्रतिपादन किया गया है, अतः इसका सार्थक नाम 'चतुर-चितारणी' है।

कृति का परिमाण एवं स्वरूप—

'चतुर-चितारणी' में कुल 148 छन्द हैं, जिनमें 147 सोरठा हैं, और अन्त में 1 घत्ता है। सभी छन्दों में प्रतिपाद्य विषय को क्रमशः आगे बढ़ाया गया है; अतः यह एक सुन्दर विचार-काव्य है।

यद्यपि यह किसी कथाविशेष पर आधारित प्रबन्धकाव्य नहीं है, पर इसे मुक्तक काव्य कहना भी उचित नहीं है, क्योंकि इसमें क्रमबद्धता दृष्टिगोचर होती है; अतः इसे विचार-काव्य ही मानना उचित है। भारतीय साहित्य में प्राचीन काल से ही ऐसे विचार-काव्यों की विशाल परम्परा प्राप्त होती है, जिसकी चर्चा स्थानाभाव के कारण यहाँ संभव नहीं है।

'चतुर-चितारणी' की विषय-वस्तु—

'चतुर-चितारणी' की विषय-वस्तु संक्षेप में इसप्रकार हैं :—

सम्यग्दृष्टि जीव ऐसा मानता है कि निश्चय से सभी जीव समान हैं, कोई भी छोटा या बड़ा नहीं है। परमार्थ से समस्त संसारी जीव भी लोकाकाश-प्रमाण असंख्यप्रदेशी, चिदानन्दस्वरूपी, अमूर्तिक और सिद्ध-समान एक-से हैं; परन्तु राग-द्वेष के कारण नाना रूप-कुरूपों में दिखाई दे रहे हैं। सेव्य-सेवक, भक्त-भगवान आदि भेद भी संसारदशा में ही दिखाई देते हैं। राग-द्वेषमय संसारदशा का अभाव होने पर सभी जीव प्रकट में भी एक-जैसे सिद्ध हो जाते हैं, उनमें कोई भेद नहीं रहता।

यहाँ ध्यान रखने की बात यह है कि कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि सिद्धदशा में सब जीव मिलकर एक हो जाते हैं, परन्तु ऐसा मानना मिथ्या है। सिद्ध जीव एक नहीं

8 : चतुर-चितारणी

है, एक-जैसे हैं। उनको जाति-अपेक्षा ही एक मानना उचित है। संख्या-अपेक्षा तो वे अनन्त ही हैं। कोई भी जीव कभी भी अन्य जीव में सर्वथा नहीं मिलता, अपनी सत्ता नष्ट नहीं करता।

सिद्ध जीवों को वीतराग, सर्वज्ञ, जिन, शुद्ध, बुद्ध, अमल, अकल, अचल, अविकार, निराकार, निराहार, निराधार आदि अनन्त नामों से कहा जा सकता है। ऋषभादि चौबीस और सीमंधरादि बीस नाम भी परमार्थ से इनके ही हैं। सन्तगण इन नामों के द्वारा निरन्तर इनके स्वरूप-चिन्तन में लगे रहते हैं।¹

1. ध्यातव्य है कि प्रस्तुत कृति में (छन्द-संख्या 51, 55, 95, 96 आदि में) परमात्मा को हरि, हर, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, ईश्वर आदि अनेक ऐसे नामों से भी सम्बोधित किया गया है, जिन्हें प्रायः लोग मिथ्या/कल्पित रागी-द्वेषी देवताओं का वाचक समझते हैं; परन्तु परमार्थ से ये सभी नाम एक वीतराग-सर्वज्ञ जिनेन्द्र देव के ही हैं, किसी अन्य रागी-द्वेषी देवी-देवता के नहीं। प्रमाणस्वरूप कतिपय आचार्यों के वचन द्रष्टव्य हैं—

(क) “बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चितबुद्धिबोधात्वं शंकरोऽसि भुवनत्रयशंकरत्वात्।
धातासि धीर शिवमार्गविधेर्विधानाद् व्यक्तं त्वमेव भगवन् पुरुषोत्तमोऽसि॥”

—आचार्य मानतुंग, भक्तामर-स्तोत्र, श्लोक 25

अर्थ :— हे जिनेन्द्र देव ! बड़े-बड़े बुद्धिमानों द्वारा पूजित होने के कारण और केवलज्ञान रूप उत्कृष्ट बुद्धि वाले होने के कारण आप ही बुद्ध हो, तीन लोक का कल्याण करने के कारण आप ही शंकर हो, मोक्षमार्ग की विधि का विधान करने के कारण आप ही विधाता (ब्रह्मा) हो और पुरुषों में उत्तम होने के कारण आप ही पुरुषोत्तम (विष्णु) हो।

(ख) “बंभप्पमुहा सण्णा सव्वा तुह जे भणंति अण्णस्स।
ससिजोण्णा खज्जोए जडेहि जोडिज्जे तेहि॥”

—पद्मनन्दि-पंचविंशति, ऋषभ-स्तोत्र, गाथा 51

अर्थ :— हे जिनेन्द्र ! ब्रह्मा, विष्णु आदि जो संज्ञाएँ सुनने में आती हैं, वे आपकी ही हैं। अर्थात् आप ही ब्रह्मा हैं, आप ही विष्णु हैं तथा बुद्ध आदि भी आप ही हैं। जो मनुष्य इन संज्ञाओं को किसी और की मानते हैं वे मूढ़ हैं, चाँदनी का सम्बन्ध खद्योत (जुगनू) के साथ करते हैं।

(ग) भगवानर्हन्नेव मुक्तिगतसिद्धात्मा वा परमब्रह्मा विष्णुः शिवो वा भण्यते। तेन नान्यः कोऽपि परिकल्पितः जगद्व्यापी तथैवैको परमब्रह्मा विष्णुः शिवो वास्तीति।

—ब्रह्मदेव सूरि, परमात्मप्रकाश-टीका, दूहा 1/109

अर्थ :— भगवान् अरिहन्त अथवा मुक्तिगत सिद्धात्मा को ही परमब्रह्मा, विष्णु या शिव कहा जाता है; किसी अन्य परिकल्पित देव को ब्रह्मा, विष्णु, शिव नहीं कहते।

(घ) “अत्र य एव परमात्मप्रकाशसंज्ञो निर्दोषपरमात्मा व्याख्यातः स एव परमात्मा, स एव परमपदः, स एव विष्णुसंज्ञः, स एवेश्वराभिधानः, स एव ब्रह्मशब्दवाच्यः, स एव सुगतशब्दाभिधेयः, स एव जिनेश्वरः, स एव विशुद्ध इत्याद्यष्टाधिकसहस्रनामाभिधेयो भवति। नानारुचीनां जनानां तु कस्यापि केनापि विवक्षितेन नाम्नाराध्यः स्यादिति भावार्थः।” —ब्रह्मदेव सूरि, परमात्मप्रकाश-टीका, दूहा 2/200

अर्थ :— यहाँ जिसे परमात्मप्रकाश या निर्दोष परमात्म कहा गया है, वही परमपद है, वही विष्णु है, वही ईश्वर है, वही ब्रह्मा है, वही सुगत है, वही जिनेश्वर है, वही विशुद्ध है और वही 1008 नामों से भी कहा जाता है। नानारुचि के लोगों के लिए वह किसी भी नाम से आराध्य होता है।

ये सिद्ध जीव कभी पुनः संसार में नहीं आते। जिस प्रकार दूध से घी, तिल से तेल और ईख से गुड़ तो होता है; पर पुनः घी से दूध, तेल से तिल और गुड़ से ईख नहीं होता; उसी प्रकार जीव संसारी से सिद्ध तो होते हैं, पर सिद्ध होने के बाद पुनः कभी संसारी नहीं होते।

‘चतुर-चितारणी’ का महत्त्व—

पं० दौलतराम कासलीवाल द्वारा रचित यह ‘चतुर-चितारणी’ यद्यपि आकार की दृष्टि से एक छोटी-सी रचना है, परन्तु अनेक दृष्टियों से बड़ी महत्त्वपूर्ण है। वैसे तो आकार की दृष्टि से छोटा होना भी आज के युग में — जब लोगों के पास बड़े ग्रन्थों को पढ़ने का समय नहीं है — इसका एक विशेष गुण माना जाना चाहिए, परन्तु फिर भी निम्नलिखित 3 दृष्टियों से तो यह कृति अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है ही—

(क) दार्शनिक दृष्टि से :— ‘चतुर-चितारणी’ दार्शनिक दृष्टि से बड़ी महत्त्वपूर्ण रचना है। इसमें अतिसंक्षेप में एवं अत्यन्त सरलतापूर्वक जैनदर्शन की वह गूढ़-गंभीर बात कह दी गई है, जो जैनदर्शन के अनेक विशालकाय ग्रन्थों का मुख्य प्रतिपाद्य है। सब जीव — चाहे वे संसारी हों या सिद्ध — समान हैं, कोई छोटा-बड़ा नहीं है, स्वभाव या जाति की अपेक्षा उनमें वस्तुतः कोई अन्तर नहीं है — यह जैनदर्शन का एक अत्यन्त सारभूत सिद्धान्त है। समयसार, नियमसार, समाधितंत्र, योगसार, परमात्मप्रकाश आदि अनेक ग्रन्थों में प्राचीन जैन आचार्यों ने इसे ही समझाने का विशेष प्रयत्न किया है। यहाँ ‘चतुर-चितारणी’ में इसी महान् दार्शनिक सिद्धान्त को बड़ी कुशलता के साथ संक्षेप में प्रस्तुत कर दिया गया है— यह विशेष महत्त्व की बात है।

इसी प्रकार, मुक्तावस्था में जीव का क्या स्वरूप रहता है — इस गूढ़ दार्शनिक विषय को भी इस कृति में अनेक दृष्टान्तों के द्वारा इतनी सुन्दरता से स्पष्ट किया गया है कि उसे पढ़कर कोई भी व्यक्ति हर्षमिश्रित आश्चर्य से ‘वाह’ ‘वाह’ कह उठेगा। इस प्रकरण में कवि ने, मुक्तावस्था में जीव क्या करता है, क्या वह किसी अन्य एक परमात्मा में जाकर मिल जाता है, क्या वह कभी अवतारादि धारण करके पुनः संसार में आता है, इत्यादि गुत्थियों को भी बड़ी सहजता के साथ सुलझा कर रख दिया है।

इसप्रकार यह कृति दार्शनिक दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण है।

(ख) आध्यात्मिक दृष्टि से :— ‘चतुर-चितारणी’ में यद्यपि दार्शनिक सिद्धान्तों का युक्तिपूर्वक प्रतिपादन है, परन्तु उसका मूल स्वर आध्यात्मिक ही है। यदि गहराई से देखा जाये तो उसमें जो दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन हुआ है वह अध्यात्म को ही ठोस आधार प्रदान करने के लिए हुआ है, किसी अन्य दार्शनिक चर्चा में उलझाने के लिए नहीं। कवि ने इस कृति में सर्वत्र तिल में तेल की भाँति अध्यात्म का ही मुख्य प्रतिपादन किया है। वे प्रारम्भ में ही आत्मा-परमात्मा का स्वरूप समझाते हुए

10 : चतुर-चितारणी

आत्मज्ञान करने की प्रेरणा देते हुए कहते हैं—

“लोकाकास समान, सब असंख्य परदेसिया।

व्यवहारें तनु मान, इह जिनश्रुति उपदेसिया॥ 4॥

चिदानंद चिद्रूप, वस्तु अरूप अमूरती।

धरि-धरि रूप विरूप, भ्रमैं कहा इह सूरती॥ 5॥

राग-दोष परभाव, लागे कर्म अनादि के।

लह्यो न सुद्ध सुभाव, धारे बहु तन वादि के॥ 6॥

जे रागादिक रोग, लागे काल अनादि तैं।

तिनकौ होय वियोग, औषध निज ज्ञानादि तैं॥ 9॥”

अर्थात् निश्चय से सभी जीव लोकाकाश के समान असंख्य प्रदेशी हैं और व्यवहार से शरीर-प्रमाण हैं। हे भाई ! तुम भी चिदानन्द-चिद्रूप एक अमूर्तिक वस्तु हो किन्तु अपनी अज्ञानता के कारण संसार में परिभ्रमण कर रहे हो। राग-द्वेष के कारण ही तुम कर्मों से बँधे हो और अपना स्वरूप नहीं जान पा रहे हो; अतः अब आत्मज्ञान रूपी औषध का सेवन करो, ताकि तुम्हारे भयंकर रागादि रोगों का विनाश हो। इसीप्रकार एक निम्नलिखित छन्द भी देखिये, जिसमें आत्मा को स्वयं ही अपना देव बताकर उसी की सेवा करने की प्रेरणा दी गई है—

“तुमरे तुम ही देव, और देव नहीं दूसरौ।

करहु न अपनी सेव, मति सेवौ जग धूसरौ॥ 14॥”

(ग) साहित्यिक दृष्टि से :— ‘चतुर-चितारणी’ एक दार्शनिक एवं आध्यात्मिक कृति होते हुए भी श्रेष्ठ साहित्यिक गुणों से युक्त है। उसमें छन्द-शास्त्र के सबसे छोटे छन्द सोरठा में कवि ने अतीव गूढ़-गंभीर भावों का और वह भी इतने कलात्मक ढंग से गुम्फन किया है कि किसी भी साहित्यिक पुरुष का हृदय मुग्ध हुए बिना नहीं रहेगा। अलंकारों में अनुप्रास, उदाहरण और विरोधाभास का सौन्दर्य तो इस कृति में पदे-पदे व्याप्त एवं इतना मनोरम है कि वैसा अन्यत्र सहज उपलब्ध नहीं हो सकता। उदाहरणार्थ एक ही छन्द में अनुप्रास एवं विरोधाभास का सौन्दर्य देखिये—

“अकल अमल अविकार, अचल सकल आनंदकर।

निराकार साकार, पुरुषाकार विकार-हर॥ 39॥”

इसी प्रकार एक निम्नलिखित छन्द भी साहित्यिक दृष्टि से विशेषतया द्रष्टव्य है जिसमें कवि और कृति दोनों के ही नाम का अतीव चमत्कारिक श्लेषालंकार-युक्त प्रयोग हुआ है—

“इह चतुर चितारण भवजल तारण, कारण सिवपुर साध कहै।

वाचै अर राचै मनहँ साँचै, ‘दौलति’ अविनासी ज लहै॥ 148॥”

‘चतुर-चितारणी’ के अध्ययन का फल—

‘चतुर-चितारणी’ में कवि ने अनेक प्रकार से सम्यग्दृष्टि ज्ञानी जीवों के श्रद्धान एवं चिन्तन को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है और अन्त में यही कहा है कि हे मित्र! कथनों का कोई अन्त नहीं है, अतः तुम निश्चित होकर ज्ञानी जीवों के अभिप्राय का गहराई से चिन्तन करो—

“को लग कहिये मीत, अंत नहीं निकु कथन कौ।

है करि परम नचीत, अर्थ चितारौ मथन कौ॥ 147॥”

‘चतुर-चितारणी’ के अध्ययन का फल बताते हुए कवि कहते हैं कि यह कृति संसार से पार उतारने वाली है और मोक्ष का कारण है; अतः जो जीव इसे पढ़ता है, समझता है और इसमें सच्चे मन से अनुराग करता है वह अविनाशी दौलत को प्राप्त करता है। यथा—

“इह चतुर-चितारण भवजल तारण, कारण सिवपुर साध कहै।

वाचै अर राचै मनहँ साँचै, ‘दौलति’ अविनासी ज लहै॥ 148॥”

‘चतुर-चितारणी’ का मूल संदेश—

जैसा कि हम ऊपर स्पष्ट कर चुके हैं कि ‘चतुर-चितारणी’ में कवि ने ज्ञानी जीवों के श्रद्धान व चिन्तन को समझाने का प्रयत्न किया है।

परन्तु प्रश्न है कि इसकी क्या आवश्यकता है? हम इसे क्यों समझें? ज्ञानियों का श्रद्धान व चिन्तन कैसा होता है — यह जानने से हमें क्या लाभ है?

उत्तर—श्रद्धान व चिन्तन ही जीवन का मूल आधार होता है। जिस व्यक्ति का श्रद्धान व चिन्तन जैसा होगा। उसका जीवन भी वैसा ही होगा। व्यक्ति के विकास एवं विनाश दोनों—का ही मूल कारण उसका अपना श्रद्धान-चिन्तन होता है। स्वर्ग-नरक, पुण्य-पाप, अहिंसा-हिंसा आदि सभी विषयों की आधारशिला भी व्यक्ति का श्रद्धान-चिन्तन ही है। संसार एवं मोक्ष दोनों के मूल कारण वस्तुतः हमारे श्रद्धान-चिन्तन में निहित रहते हैं।

अतः प्रस्तुत कवि के माध्यम से कवि हमें यही मूल सन्देश देना चाहता है कि हम अपने श्रद्धान-चिन्तन को बदलें, उसे ज्ञानियों जैसा बनाएँ, बस ! श्रद्धान-चिन्तन के परिवर्तन से ही हमारी सारी समस्याएँ हल हो जाएंगी।

सम्पूर्ण जिनवाणी में भी हमें मुख्य रूप से अपने श्रद्धान एवं चिन्तन के परिवर्तन की ही शिक्षा दी गई है; क्योंकि जब हमारा श्रद्धान एवं चिन्तन बदल जायेगा तो

12 : चतुर-चितारणी

जीवन तो अवश्य रूप से बदलेगा ही, क्योंकि जीवन व्यक्ति के श्रद्धान एवं चिन्तन का ही तो प्रतिफल होता है।

अतः 'चतुर-चितारणी' का मूल सन्देश यही है कि हम अपना अनादिकालीन मिथ्या श्रद्धान व चिन्तन बदलें एवं ज्ञानियों जैसा श्रद्धान व चिन्तन करें। यही कल्याण का मार्ग है।

'चतुर-चितारणी' की भाषा—

उपरि-उद्धृत 'चतुर-चितारणी' के सभी काव्यांशों से यह भलीभांति स्पष्ट है कि उसकी भाषा ब्रजभाषा है; परन्तु ज्ञातव्य यह है कि वह केशव, देव, बिहारी आदि अनेक कवियों जैसी अत्यन्त शुद्ध एवं संस्कृतनिष्ठ क्लिष्ट ब्रजभाषा नहीं है, अपितु राजस्थान से प्रभावित सरल-सुबोध ब्रजभाषा है। कवि के राजस्थानी होने के कारण और वह भी अत्यन्त लोकसम्पर्क वाला होने के कारण उसकी रचनाओं पर राजस्थानी भाषा का प्रभाव अत्यधिक दृष्टिगोचर होता है। दार्शनिक कृति होने के कारण यद्यपि उसमें तत्सम शब्दों का प्रयोग अधिक हुआ है, परन्तु तद्भव शब्दों का प्रयोग भी कम नहीं है। यथा— नचींत, खंध, लिछमी, परजाय, जोगीसुरा, सुछंद, आचारज, आदि।

जो भी हो, 'चतुर-चितारणी' की भाषा अत्यन्त प्रवाहपूर्ण, सहज एवं ऐसी सरल सुबोध है कि एक सामान्य पाठक भी उसे सुगमता से समझ सकता है।¹

'चतुर-चितारणी' की भाषा में अलंकारों के सहज प्रयोग से सात्त्विक चमत्कार की भी सृष्टि हुई है। यथा—

अनुप्रास— निपट निकट तर नाथ, निकपट निगम निरालसी।

निरभै करण अनाथ, नित्य निरंजन निजरसी॥ 44॥”

यमक— जैसे पारस पाय, लोह होय कंचन महा।

तैसे पारस ध्याय, भव्य जीव शिवपद लहा॥ 67॥”

दृष्टांत— दूध थकी है घीव, घीव न होय कदापि पय।

जीव थकी है पीव, पीव न है जगजाल महिं॥ 141॥”

उदाहरण— सिद्ध अनंता एक, रूप एह सतगुर कहे।

जैसे दीप अनेक, जाति एकता सब लहै॥ 21॥”

1. भाषा के सम्बन्ध में कवि का विश्वास भी ऐसा ही प्रतीत होता है कि वर्तमान समय में भाषा ऐसी होनी चाहिये जिसे अधिक से अधिक लोग — अल्पमति भी — समझ सकें। यथा—

“देव भाष गंभीर, संस्कृत विरला जानैं।

पंडित करें बखान, अल्पमति नाहि बखानैं॥

जो है ग्रन्थ अनूप, देशभाषा के मांही।

बांचैं बहुत ही लोक, या महै संसै नांही॥” —जीवन्धरस्वामिचरित, प्रशस्ति 6

श्लेष— इह चतुर चितारण भव जल तारण, कारण सिवपुर साध कहै।
वाचै अर राचै मनहँ साँचै, 'दौलति' अविनासी ज लहै॥ 148॥”

‘चतुर-चितारणी’ के रचयिता—

‘चतुर-चितारणी’ के रचयिता महाकवि पं० दौलतराम कासलीवाल हैं। इनके जीवन एवं साहित्य का विस्तृत परिचय मैं अपने पी-एच०डी० के शोध-प्रबंध ‘पंडित दौलतराम कासलीवाल और उनका साहित्य’ में लिख चुका हूँ। यहाँ विस्तार-भय से वह सब लिखना सम्भव नहीं है। विशेष जिज्ञासु वहाँ देखने का कष्ट करें। संक्षेप में यहाँ यह ज्ञातव्य है कि ये ‘छहढाला’ वाले पं० दौलतराम से अलग हैं और इनका जन्म राजस्थान में दौसा जिले के बसवा नामक ग्राम में आषाढ़ कृष्ण चतुर्दशी वि०सं० 1749 को हुआ था। इनके पिता का नाम आनन्दराम था और ये खण्डेलवाल वैश्य जाति के उत्तम पुरुष थे।¹

पं० दौलतराम कासलीवाल जयपुर राजदरबार में वकील या मंत्री के पद पर कार्य करते थे और इतने प्रतिभाशाली एवं कर्मठ थे कि अपने सम्पूर्ण राज्यकार्य को भी कुशलता के साथ करते थे और शेष समय में शास्त्रों के अध्ययन, लेखन एवं प्रवचन द्वारा समाज का उत्तम उपकार भी करते थे। वे राज्यकार्य के अधीन मथुरा, उदयपुर और जयपुर में बहुत वर्षों तक रहे, पर सभी स्थानों पर राज्यकार्यों के साथ-साथ शास्त्र-प्रवचनादि के द्वारा स्व-पर-कल्याण में भी अनुरक्त रहते थे।

पंडित दौलतराम कासलीवाल को जैन तत्त्वज्ञान की शिक्षा सर्वप्रथम आगरा की ‘अध्यात्म सैली’ से प्राप्त हुई थी और वे जैनदर्शन के ठोस विद्वान् बन गये थे। उन्हें जिनवाणी के चारों अनुयोगों का गहरा ज्ञान था। उनकी विद्वत्ता की चर्चा दूर-दूर तक फैली हुई थी। अनेक जिज्ञासु धर्मचर्चा-हेतु उनसे मिलने भी आते थे। जयपुर-निवासी ब्र० रायमल जी भी उनसे मिलने उदयपुर तक गये थे और आपकी विद्वत्ता से बहुत प्रभावित हुये थे।² पं० जयचन्द जी छाबड़ा ने तो आपको ‘पण्डितराय’ विशेषण से सम्बोधित किया है—

1. “जाति बानियां श्रावक सोय, खण्डेलवाल जानहुं सब कोय।

अलि कहिए कासलीवाल, आनन्दराम सुत वचन रसाल॥ —पुण्यास्रवकथाकोश-भाषा, प्रशस्ति 12

2. देखिये उनकी ‘जीवन-पत्रिका’, पृष्ठ 4 का यह उद्धरण—

“पीछें राणां का उदैपुर विषैं दौलतराम तेरापंथी, जैपुर राजा के उकील तासूँ धर्म अर्थि मिले। वाकैं संस्कृत का ज्ञान नीकां, बाल अवस्था सूं ले ब्रद्ध अवस्थापर्यंत सदैव सौ-पचास शास्त्र का अवलोकन कीया। और उहाँ दौलतराम के निमित्त करि दस-बीस साधमी वा दस-बीस बायां सहित सैली का नृणाव बणि रह्या।” —पंडित टोडरमल : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व (डॉ० भारिल्ल), पृष्ठ 334

“दौलतराम गुणी अधिकाय। पंडितराय राज में जाय।
ताकी बुद्धिलसै सब खरी। तीन पुराण वचनिका करी।।”

—सर्वार्थसिद्धि-वचनिका, प्रशस्ति, छन्द 10

पं० दौलतराम कासलीवाल संस्कृत-प्राकृत आदि भाषाओं, विविध कोशग्रन्थों एवं व्याकरण, ज्योतिष, न्याय, योग आदि विषयों के भी अच्छे ज्ञाता थे।

उनका स्वर्गवास 80 वर्ष की उम्र में भाद्रपद शुक्ला द्वितीया वि०सं० 1829 को जयपुर में हुआ।

पं० दौलतराम कासलीवाल की रचनायें—

पं० दौलतराम कासलीवाल की अद्यावधि 20 रचनायें उपलब्ध हो चुकी हैं, जिनमें से 10 पद्यात्मक हैं और 10 गद्यात्मक।

पद्यात्मक रचनाओं के नाम इस प्रकार हैं :— 1. क्रियाकोश, 2. जीवंधरस्वामिचरित, 3. अध्यात्मबारहखड़ी, 4. विवेक-विलास, 5. श्रेणिक-चरित, 6. श्रीपाल-चरित, 7. चौबीस दण्डक, 8. सिद्धपूजाष्टक, 9. चतुर-चितारणी, 10. सार-समुच्चय।

गद्यात्मक रचनाओं के नाम इस प्रकार हैं :— 1. पुण्यास्रवकथाकोश-भाषा, 2. आदिपुराण-वचनिका, 3. पुरुषार्थसिद्धयुपाय-भाषाटीका, 4. हरिवंशपुराण-वचनिका, 5. परमात्मप्रकाश-भाषा, 6. तत्त्वार्थसूत्र-टिप्पणी, 7. वसुनन्दि-श्रावकाचार-टिप्पणी, 8. पद्मपुराण-वचनिका, 9. कार्तिकेयानुप्रेक्षा-टिप्पणी, 10. समयसार-कलश-टिप्पणी।

इनमें से 10 रचनायें कवि की मौलिक रचनायें हैं और 10 अनुवाद या टीकापरक। तथा यदि दूसरी दृष्टि से देखा जाए तो 7 रचनायें प्रथमानुयोग से सम्बन्धित हैं, 1 करणानुयोग से सम्बन्धित है, 4 चरणानुयोग से सम्बन्धित हैं और 8 द्रव्यानुयोग से सम्बन्धित हैं, जिससे प्रकट होता है कि पंडित दौलतराम कासलीवाल चारों अनुयोगों के अच्छे ज्ञाता थे।

खेद है कि इनमें से अधिकांश रचनायें अद्यावधि अप्रकाशित हैं।

प्रस्तुत संस्करण—

प्रस्तुत ‘चतुर-चितारणी’ भी पहली बार प्रकाशित हो रही है। इसकी एकमात्र पाण्डुलिपि मुझे पी-एच० डी० का शोधकार्य करते समय श्री दिगम्बर जैन मन्दिर, धर्मपुरा, दिल्ली के हस्तलिखित ग्रन्थ-भण्डार से प्राप्त हुई थी। इसमें 14×28 से०मी० साइज के 10 पत्र (19 पृष्ठ) हैं। प्रत्येक पृष्ठ पर 10 पंक्तियाँ हैं। प्रति का लेख सुन्दर है, पर कहीं-कहीं अस्पष्टता प्रतीत होती है। ह्रस्व-दीर्घ मात्राओं की भी लिपिकार से बहुत भूलें हुई हैं। छन्दों पर क्रम-संख्या लिखने में भी दो स्थलों पर चूक हो गई है। एक स्थल पर तो एक छन्द (क्रमांक 131) पूरा का पूरा ही फिर से लिख दिया है और उस

पर क्रमांक अगला डाल दिया है। संभव है कि मूल ग्रन्थ का कोई एक छन्द छूट ही गया हो। इसीप्रकार छन्द क्रमांक 58 में तीन ही चरण हैं, चौथा चरण लिखने से रह गया है।

बहरहाल, प्रस्तुत संस्करण का सम्पादन और अनुवाद मैंने इसी इकलौती प्रति के आधार पर किया है। मैंने इसकी अन्य प्रतियों की बहुत खोज की, पर कोई नहीं मिली। यदि किसी सज्जन को मिले तो मुझे सूचित करने की कृपा करें, ताकि इसे और अधिक शुद्ध किया जा सके।

अन्त में, प्रस्तुत 'चतुर-चितारणी' के अध्ययन से हम सभी परमार्थ से चतुर बनकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्राप्ति करें— इस मंगल भावना के साथ यह कृति आपके कर-कमलों में सादर समर्पित करता हूँ—

कर-कमलों में दे रहा, हृदय-कमल में लीजिये।

इसके चिन्तन-मनन से, भवजल को जल (तज) दीजिये॥

—वीरसागर जैन

असाधारण व्यक्तित्व के धनी पं० दौलतराम कासलीवाल

(क) "पं० दौलतराम का व्यक्तित्व असाधारण था। वे एक ओर तत्कालीन जयपुर की राजनीति के सूत्रधार थे और दूसरी ओर साहित्य-साधक भी। उनकी रचनाओं से उनकी विद्वत्ता स्पष्ट है। संस्कृत और हिन्दी दोनों भाषाओं पर उनका समान अधिकार था। उन्होंने जैनपुराणों और ग्रन्थों का सफल हिन्दी-अनुवाद किया है। उनका गद्य हिन्दी की अमूल्य निधि है। 'अध्यात्मबारहखड़ी' नाम के ग्रन्थ में उनकी मौलिक काव्य-प्रतिभा के दर्शन होते हैं।— वैभवसम्पन्न होते हुए भी पंडित जी का हृदय उदार और दयालु था। उनका जो समय राज्यकार्यों से बचता था, उसका उपयोग वह पूजन, ध्यान, अध्ययन और ग्रंथ-निर्माण में करते थे। उनका रहन-सहन सादा और पवित्र था।"

—डॉ० प्रेमसागर जैन, हिन्दी जैन-भक्ति-काव्य और कवि, पृष्ठ 352

(ख) "दौलतराम कासलीवाल जयपुर राज्य के बसवा नगर के निवासी और साह आनन्दराम कासलीवाल के पुत्र थे। ये उच्चशिक्षित, विद्याव्यसनी, भारी साहित्यकार, साथ ही नीतिपटु और राज्यकार्य कुशल थे।— राजा और प्रजा में उनकी प्रतिष्ठा थी ही, राजपरिवार में आते-जाते थे और पण्डितराय कहलाते थे। इस सबके अतिरिक्त हिन्दी-गद्य के विकास में दौलतराम कासलीवाल का अभूतपूर्व योगदान है।"

—डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन, प्रमुख ऐतिहासिक जैन पुरुष और महिलायें, पृष्ठ 318

पण्डित दौलतराम कासलीवाल द्वारा रचित

चतुर-चितारणी

(हिन्दी-अनुवाद)

सर्वप्रथम मैं जिनेन्द्र, मुनीन्द्र और जैन-सिद्धान्त को प्रणाम करता हूँ, गुणों के भण्डार गणधरदेव को प्रणाम करता हूँ, तथा परमशान्त रस को भी प्रणाम करता हूँ ॥ 1 ॥

इसके बाद, जो सुखदायक है और संसार-सागर से पार उतारनेवाली है — ऐसी जिन-आज्ञा को भी मैं अपने हृदय में धारण करके प्रणाम करता हूँ। और यह 'चतुर-चितारणी' प्रारम्भ करता हूँ ॥ 2 ॥

चतुर का अर्थ है— 'सुजान' या 'सम्यग्ज्ञानी'। वह सम्यग्ज्ञानी जीव ऐसा चिन्तवन करता है कि निश्चयनय से सभी जीव जिन-समान हैं, कोई भी छोटा नहीं है ॥ 3 ॥

सम्यग्ज्ञानी जीव ऐसा चिन्तन करता है कि सभी जीव निश्चयनय से लोकाकाश के समान असंख्यप्रदेशी हैं और व्यवहारनय से शरीर-प्रमाण हैं— ऐसा जिन-शास्त्रों का उपदेश है ॥ 4 ॥

अहो ! यह आत्मा चिदानन्द, चिद्रूप और अरूपी — अमूर्तिक वस्तु है, किन्तु अपनी अज्ञानता के कारण विविध विकृत रूप धारण कर-करके संसार में परिभ्रमण कर रहा है ॥ 5 ॥

राग एवं द्वेष के प्रभाव से इस जीव के साथ अनादिकाल से कर्म चिपके हुए हैं, अतः इस जीव ने कभी अपना शुद्ध स्वभाव नहीं प्राप्त किया है और व्यर्थ ही बहुत शरीर धारण किये हैं ॥ 6 ॥

अहो ! इस जीव ने षट्काय जीवों की हिंसा करके स्वयं भी बहुत बार मरण किया है। इस जीव ने आज तक कभी भी मिथ्या-परिणति का त्याग करके सम्यक् आत्म-परिणति की आराधना नहीं की है ॥ 7 ॥

हे दयालु भाई ! अब तो अपने मन में भलीप्रकार समझकर सावधान होओ और षट्काय के जीवों पर दया करो। तथा अपने हृदय में अहिंसादि सद्गुणों की माला धारण करो, ताकि सुखदायक सिद्धि का वरण कर सको ॥ 8 ॥

पण्डित दौलतराम कासलीवाल द्वारा रचित

चतुर-चितारणी

अथ 'चतुर-चितारणी' लिख्यते —

(सोरठा)

प्रणमि जिनंद मुनिंद, प्रणमि जैन सिद्धांत कौ ।
प्रणमि गुणाढ गणिंद, प्रणमि परम रस सांति कौ ॥ 1 ॥

जिन आज्ञा सुखदाँनि, संसारार्णव तारणी ।
ताहि प्रणमि उर आनि, भाषौं चतुर-चितारणी ॥ 2 ॥

चतुर चितार सुजाँण, रोक हमारी वीनती¹ ।
सब जन जिन परमाँण, निश्चै नय नहिं हीनती ॥ 3 ॥

लोकाकास समान, सब असंख परदेसिया ।
व्यवहारें तनु मान, इह जिनश्रुति उपदेसिया ॥ 4 ॥

चिदानंद चिद्रूप, वस्तु अरूप अमूरती ।
धरि-धरि रूप विरूप, भ्रमैं कहा इह सूरती ॥ 5 ॥

राग-दोष परभाव, लागे कर्म अनादि के ।
लह्यो न सुद्ध सुभाव, धारे बहु तन वादि के ॥ 6 ॥

जीव छकाय विदारि, आप हु काया बहु तजी ।
मिथ्या परिणति डारि, कबहु न निज-परिणति भजी ॥ 7 ॥

अब चित चेत दयाल, करि करुणा षट्काय की ।
उर धरि गुन वर माल, वरो सिद्धि सुखदायकी ॥ 8 ॥

1. 'रोक हमारी वीनती' — इसका स्पष्ट अर्थ मुझे समझ में नहीं आया ।

जे रागादिक रोग, लागे काल अनादि तैं ।
तिनकौ होय वियोग, औषध निज ज्ञानादि तैं ॥ 9 ॥

वाह्या अंकुर लेय, दाह्या बीज न अंकुरा ।
मनपोष्यां दुख देय, मनमोस्यां है संकरा ॥ 10 ॥

सेय ज विषय-कषाय, भटके भववन माँहि बहु ।
अब सब भ्रांति नसाय, शिवहौ लेय सुसक्ति सहु ॥ 11 ॥

भव शिव जाति न दोय, भेद सकल भ्रांति हि तनो ।
भ्रांति न अपनी होय, इह धारै विकल्प घनों ॥ 12 ॥

तुम निरविकल्प भाव, धारौ केवल कारणौ ।
काहे भूलि प्रभाव, भरमौ घर-घर वारणौ ॥ 13 ॥

तुमरे तुम ही देव, और देव नहिं दूसरौ ।
करहु न अपनी सेव, मति सेवौ जग धूसरौ ॥ 14 ॥

देवी और न कोय, शक्ति तिहारी चंडिका ।
सो निज सत्ता होय, मोहासुर दुख खंडिका ॥ 15 ॥

जे निज आत्म ध्याय, भये सिद्ध परमात्मा ।
ते त्रिभुवन के राय, हैं जिनराय जितात्मा ॥ 16 ॥

हम सेवक जिन सेय, इह व्यवहार प्ररूपणा ।
आप हि ध्याता ध्येय, निश्चै येह निरूपणा ॥ 17 ॥

हम दासा जिनदेव, कौलग जौलग जग-दसा ।
होय कर्म कौ छेव, तव हम है जिनवर जिसा ॥ 18 ॥

हे भाई ! आत्मज्ञानादि की औषध से ही तुम्हारे अनादिकालीन रागादिरूप भयंकर रोगों का नाश होगा ॥ 9 ॥

हे भाई ! जिसप्रकार कच्चे बीज में से ही अंकुर की उत्पत्ति हो सकती है, जले हुए बीज में से अंकुर की उत्पत्ति नहीं होती। उसीप्रकार मन को रागादि से पुष्ट करने पर ही दुख की प्राप्ति होती है, रागादि से मुक्त करने पर नहीं। मन को रागादि से मुक्त कर लेने पर तो शिवसुख की प्राप्ति होती है ॥ 10 ॥

हे भाई ! विषय-कषायों का सेवन करके तुम इस संसार-वन में बहुत भटक चुके हो; अतः अब समस्त भ्रान्ति का नाश करके मोक्ष की प्राप्ति करो और अपनी सर्व आत्मिक शक्ति को प्राप्त करो ॥ 11 ॥

हे भाई ! परमार्थ से जीव के संसारी और मुक्त — ऐसे दो भेद ही नहीं होते हैं। भेद तो वास्तव में सारा ही भ्रान्ति का है। तथा निश्चय से भ्रान्ति भी जीव का स्वभाव नहीं है — ऐसा समझो, तभी सर्वविकल्पों का अभाव होगा ॥ 12 ॥

हे भाई ! तुम तो निर्विकारस्वभावी हो, केवलज्ञान के कारणभूत वस्तु हो। तुम क्यों व्यर्थ ही अपना प्रभाव भूलकर हर घर के द्वार पर जाकर भटक रहे हो — क्यों परपदार्थों से याचना कर रहे हो? ॥ 13 ॥

हे भाई ! तुम स्वयं ही अपने देव हो। निश्चय से तुम्हारा देव अन्य कोई दूसरा नहीं है; अतः तुम अपनी ही सेवा/आराधना करो, जगत के अन्य किसी परपदार्थ की सेवा/आराधना मत करो ॥ 14 ॥

हे भाई ! इस जगत् में देवी, शक्ति या चंडिका भी किसी अन्य का नाम नहीं है, अपितु तुम्हारी प्रचण्ड आत्मशक्ति ही निश्चय से देवी है, जो आत्मसत्ता का ही दूसरा नाम है और मोहरूपी बड़े राक्षस का नाश करनेवाली है ॥ 15 ॥

हे भाई ! जो जीव निज आत्मा का ध्यान करके सिद्ध परमात्मा बन गये हैं, वे तीन लोक के स्वामी हैं, जिनेन्द्र हैं, जितात्मा हैं; परन्तु 'वे सेव्य (आराध्य) हैं और हम सेवक (आराधक) हैं' — ऐसा कहना व्यवहार ही है। निश्चय से तो यह जीव स्वयं ही ध्याता है और स्वयं ही ध्येय है ॥ 16-17 ॥

हे भाई ! हम दास हैं और जिनेन्द्र भगवान देव हैं — ऐसा भेद तभी तक है जब तक हमारी संसार दशा है। संसार दशा या सर्वकर्म का अभाव होने पर तो हम भी जिनवर-जैसे ही हो जाएँगे ॥ 18 ॥

जातिभेद नहिं कोय, द्रव्यभेद तौ है सही।
इह जिन आज्ञा होय, या माहें संसै नहीं ॥ 19 ॥

है कैयक मत माँहि, द्रव्यभेद हू नहिं कहै।
जल मैं जल मिलि जाय, यौं जिनश्रुति नहिं सरदहैं ॥ 20 ॥

सिद्ध अनंता एक, रूप एह सतगुर कहे।
जैसे दीप अनेक, जाति एकता सब लहै ॥ 21 ॥

मिलि करि एक हि वस्तु, होहि यहै दूसण महा।
आतम वस्तु प्रसस्त, अस्ति होय भद्रिक कहा ॥ 22 ॥

चिंतामणी अनेक, सकल एक से अति रमा।
इह धारौ ज विवेक, सिद्ध अनंते सब समा ॥ 23 ॥

अर कैयक मत माँहि, जाति भिन्न जगदीस की।
दास इहै द्वै नाँहि, करै टहल ही ईस की ॥ 24 ॥

या मत हू की बात, नहिं आवै परमाण में।
सत चित आनंद गात, सब समान निरवाण में ॥ 25 ॥

तुस माँही जो धान, अर तुस-वरजित जो भया।
तिनमें जाति न आनि, इह उर मैं धारौ भया ॥ 26 ॥

जब तुस-जुत हो नाज, तव कण तें कछु अंतरा।
मानत है मुनिराज, कण हूवांस अनंतरा ॥ 27 ॥

दल र घात हु न भेद, वात हुवां कहु भेद कौ।
भव-शिव माहिं अभेद, शिव हूवां कहु खेद कौ ॥ 28 ॥

हे भाई ! जिनेन्द्र भगवान की और हमारी जाति भिन्न-भिन्न नहीं है, एक ही है; किन्तु यहाँ यह भी निःसंदेह समझ लेना चाहिए कि वस्तु दो पृथक्-पृथक् ही हैं, वस्तु एक नहीं है— ऐसी जिन-आज्ञा है ॥ 19 ॥

कुछ लोगों की मान्यता है कि (मुक्त दशा में) आत्मा और परमात्मा में वस्तु-भेद भी नहीं रहता है, जिसप्रकार जल में जल मिल जाता है उसीप्रकार आत्मा परमात्मा में ही मिल जाता है; किन्तु जैनशास्त्र (जिनवाणी) ऐसा श्रद्धान नहीं कराते ॥ 20 ॥

सद्गुरु कहते हैं कि जिसप्रकार दीपक अनेक होते हैं, परन्तु उन सब की जाति एक होती है; उसीप्रकार सिद्ध जीव संख्या-अपेक्षा अनेक होते हैं, परन्तु उन सबका स्वरूप एक-सा होता है ॥ 21 ॥

यदि आत्मा और परमात्मा (मुक्त दशा में) मिलकर एक ही वस्तु हो जाएँ तो महादोष उत्पन्न हो जायेगा। मंगलकारी आत्मवस्तु की सत्ता ही कैसे शेष रहेगी ? और फिर इसमें उसका कल्याण भी क्या हुआ? ॥ 22 ॥

अतः हे भाई ! जिसप्रकार चिंतामणि संख्या-अपेक्षा अनेक होते हैं और स्वभाव-अपेक्षा सब एक-से होते हैं, उसीप्रकार सिद्ध जीव भी संख्या-अपेक्षा अनंत होते हैं और स्वभाव-अपेक्षा सब समान होते हैं —ऐसा ही श्रद्धान करो ॥ 23 ॥

तथा कुछ लोगों का मत है कि परमात्मा की जाति ही भिन्न है। कोई भी दास कभी परमात्मा बन ही नहीं सकता है। वह तो सदैव परमात्मा की सेवा-चाकरी ही कर सकता है। किन्तु इस मत की बात भी प्रामाणिक सिद्ध नहीं होती है; क्योंकि मोक्ष-अवस्था में सभी जीव सत्, चित् और आनन्दमय शरीर को धारण करते हुए एक समान ही रहते हैं ॥ 24-25 ॥

हे भाई ! धान दो प्रकार का है— एक तो तुष-सहित और दूसरा तुष-रहित; किन्तु उन दोनों में धान की जाति दो अलग-अलग नहीं है। इसे तुम अपने हृदय में भली प्रकार समझो ॥ 26 ॥

हे भाई ! तुष-सहित और तुष-रहित अनाज में एक अपेक्षा से अन्तर अवश्य है, किन्तु जब तुष-सहित अनाज भी कण (तुष-रहित अनाज) हो जाए तब उन दोनों में कोई अन्तर नहीं है— ऐसा ज्ञानी मुनिराज कहते हैं ॥ 27 ॥

स्वर्णपाषाण और स्वर्ण में कोई भेद नहीं है, इसलिए स्वर्ण हो जाने पर उन दोनों में कोई भेद नहीं रहता। इसीप्रकार संसार और मोक्ष अवस्था में जीव समान ही है, उसमें कोई भेद नहीं है, इसीलिए मोक्ष हो जाने पर उनमें कोई भेद नहीं रहता, कोई दुःख नहीं बचता ॥ 28 ॥

जे पूरण अविकार, तिनके टहल रही कहा।
तन विन कौन प्रकार, करै टहल शिवगति लहा ॥ 29 ॥

जिन सेयाँ फल कौन, जो नहिं जन कौ जिन करै।
काहे श्रीधर भौन, सेवो जो विपत न हरै ॥ 30 ॥

भ्रंग कीट कौ भ्रंग, करै कीट परजै हरै।
उर में धरो अभंग, हरि कौ जो हरि नहिं करै ॥ 31 ॥

निज-सम करै सुगंध, परतरु कौ मलयागिरि।
काटि करम कौ बंध, क्यों न करै निज सम हरी ॥ 32 ॥

भेदमती केतेक, कैयक कौ ज अभेदमत।
द्वय नय भासक एक, जिन-मारग है जग-विरत ॥ 33 ॥

और सकल एकांति, अनेकांति इह जैन है।
जे मुनि परम प्रसांति, तिनकै यह ही नैन है ॥ 34 ॥

जे केवल निज ज्ञान, मइ केवल अति केवली।
तिनकौ करिये ध्यान, तौ लहिये परिणति भली ॥ 35 ॥

तिनके नाम अनंत, वीतराग सर्वज्ञ जिन।
शुद्ध बुद्ध अरिहंत, भजें संत सब रैन-दिन ॥ 36 ॥

सिद्ध प्रसिद्ध प्रसंत, श्री भगवंत महंत मुनि।
ज्याँकी आदि न अंति, ताके गुन मन माँहि गुनि ॥ 37 ॥

गुन कौ पार न कोय, मुनिवर हू कथि ना सकै।
जग तैं विरक्त होय, सोई गुन जिन में छकै ॥ 38 ॥

हे भाई ! जो जीव पूर्णतया अविकारी हो जाते हैं, उनके सेवा-चाकरी वाली बात ही कहाँ शेष रह जाती है? तथा वहाँ शरीर ही शेष नहीं रहता है, अतः शरीर के बिना वह मुक्त जीव किसप्रकार किसी की सेवा-चाकरी करेगा ? ॥29॥

हे भाई ! यदि जीव स्वयं भी जिन ही न बन जाए तो जिनेन्द्र की आराधना का फल ही क्या हुआ ? उस लक्ष्मीपति के द्वार की सेवा से क्या लाभ, जो सेवक की विपत्ति को दूर न करे ? ॥30॥

हे भाई ! तुम इस बात को भली प्रकार अपने हृदय में धारण करो कि भगवान वही है जो एक साधारण कीट को भी कीटादि पर्यायों से मुक्त करके भगवान बना दे। जो अपने भक्त को भगवान न बनाए, वह कैसा भगवान ? ॥31॥

हे भाई ! जिसप्रकार मलयागिरि वृक्ष अन्य वृक्ष को भी अपने ही समान सुगन्धित बना देता है, उसीप्रकार भगवान भी अपने भक्त को सर्व कर्मबन्ध से मुक्त करके अपने समान बना लेते हैं ॥32॥

अहो ! इस लोक में कुछ मत तो सर्वथा भेद मानते हैं और कुछ सर्वथा अभेद; किन्तु जिनधर्म सारी दुनिया से अलग है, वह इन दोनों बातों को अपनी-अपनी उचित अपेक्षा से ठीक मानता है ॥33॥

जगत् के अन्य सभी मत एकान्तवादी हैं, परन्तु जैनधर्म अनेकान्तवादी है। तथा यह अनेकान्त ही परमशान्त महामुनियों का नेत्र है ॥34॥

हे भाई ! केवली भगवान निज आत्मज्ञानमय होते हैं, अतः उनका ध्यान करने से जीव को शुद्ध परिणति की प्राप्ति होती है ॥35॥

तथा उन केवली भगवान के वीतराग, सर्वज्ञ, जिन, शुद्ध, बुद्ध, अरिहंत इत्यादि अनंत नाम हैं, जिनका संत पुरुष दिन-रात भजन करते रहते हैं ॥36॥

उन भगवान को सिद्ध, प्रसिद्ध, प्रशान्त, श्री, भगवंत, महंत, मुनि आदि भी कहते हैं। उनके गुणों का कोई आदि और अंत नहीं है। तुम उनके गुणों का अपने मन में ध्यान करो ॥37॥

भगवान के गुणों का कोई पार नहीं है। बड़े-बड़े मुनि भी भगवान के गुणों का बखान नहीं कर पाते हैं। जो जीव संसार से विरक्त हो, वही भगवान के गुणों में निमग्न हो सकता है ॥38॥

अकल अमल अविकार, अचल सकल आनंदकर ।
निराकार साकार, पुरुषाकार विकार-हर ॥ 39 ॥

निराधार आधार, निराहार न विहार-कर ।
अनागार भवतार, परम सार अतिभाव धरि ॥ 40 ॥

प्रभु युगादि अनादि, अनिधन अमन अतिन्द्रिया ।
मोह राग दोषादि, रहित निराकुल सुखमई ॥ 41 ॥

गुणी गुणाधिक ईस, गुण परि गणपति जितपति ।
दिनपति सुरपति सीस, नावैं गावै सदगती ॥ 42 ॥

विज्ञ गुणाज्ञ गुणांढि सरगत सर्वज्ञो सदा ।
धरणीधर धरमाढि, अति धनाढि वर संपदा ॥ 43 ॥

निपट निकट तर नाथ, निकपट निगम निरालसी ।
निरभै करण अनाथ, नित्य निरंजन निजरसी ॥ 44 ॥

निराभरण निरदुंद, निरआयुध निरलेप कर ।
स्वच्छ सुछंद अफंद, नय परमाण निक्षेप पर ॥ 45 ॥

सत्य सदा सिव सूरि, आचारज उपदेश कर ।
संशय विभ्रम दूरि, पूरव अंग प्रकीर्ण धर ॥ 46 ॥

अध्यापक गुरदेव, जपहिं जतीसुर साधवा ।
करहिं सुरासुर सेव, रटहिं उमाधव माधवा ॥ 47 ॥

निरमद निरमल नाम, राम विराम अनाम है ।
ध्यावैं रिषि निहकाम, परमानंद सुधाम है ॥ 48 ॥

भगवान अ-कल (शरीर-रहित) हैं, अमल (स्वच्छ) हैं, अविकार हैं, अचल हैं, पूर्णानन्दमय हैं, निराकार हैं, साकार हैं, पुरुषाकार हैं और सम्पूर्ण विकारों को दूर करनेवाले हैं ॥ 39 ॥

वे निराधार हैं, सबके आधार हैं, निराहार हैं, अविहार (कहीं भी विहार न करनेवाले) हैं, अनगार (गृह-रहित) हैं, भवतार हैं और परम सार (श्रेष्ठ) हैं। तुम उनका अत्यन्त भावपूर्वक ध्यान करो ॥ 40 ॥

हे भाई ! वे भगवान प्रभु हैं, युगादि हैं, अनादि हैं, अनिधन हैं, अमन (मन-रहित) हैं, अतीन्द्रिय हैं और समस्त मोह-राग-द्वेष आदि भावों से रहित निराकुल सुखमय हैं ॥ 41 ॥

वे गुणी हैं, अनन्त गुणों के स्वामी हैं, परम गुणों के धारक हैं, गणपति हैं और विजेताओं के भी स्वामी हैं। दिनेश, सुरेश आदि सभी उन्हें सिर झुकाकर प्रणाम करते हैं और उनके सद्गुणों का ध्यान करते हैं ॥ 42 ॥

भगवान विज्ञ हैं, गुणज्ञ हैं, गुणाढ्य हैं, सर्वगत हैं, सर्वज्ञ हैं, धरणीधर हैं, धर्माढ्य हैं और श्रेष्ठ सम्पदा के कारण महाधनाढ्य हैं ॥ 43 ॥

हे भाई ! ऐसे ही ये भगवान तेरे भी अत्यन्त निकट हैं। तू उन्हें देख। हे भाई ! वे निष्कपट हैं, निर्गम हैं, निरालसी हैं, निर्भयकरण हैं, अनाथ हैं (अर्थात् उनका कोई अन्य नाथ नहीं है, वे स्वयं ही अपने नाथ हैं), नित्य हैं, निरंजन हैं और सदा आत्मरस में डूबे हैं ॥ 44 ॥

वे भगवान निराभरण हैं, निर्द्वन्द्व हैं, निरायुध हैं, निर्लेप हैं, स्वच्छ हैं, स्वच्छन्द हैं, अफन्द हैं और नय-प्रमाण-निक्षेप से भी पार हैं ॥ 45 ॥

वे सत्य हैं, सदाशिव हैं और हितकर उपदेश देनेवाले महाआचार्य हैं। उनका उपदेश संशय-विभ्रम को दूर करनेवाला है और वे समस्त अंग-पूर्व-प्रकीर्ण के धारक हैं ॥ 46 ॥

वे अध्यापक हैं, गुरुदेव हैं। उनको यतीश्वर साधु भी जपते हैं। सुर और असुर भी उनकी सेवा करते हैं। उमाधव, माधव भी उनका नाम रटते हैं ॥ 47 ॥

वे निर्मद (मद या मान से रहित) हैं, निर्मल (रागादि मल से रहित) हैं, राम (आत्मा में ही रमने वाले) हैं, विराम (आत्मा में ही ठहरने वाले) हैं और अनाम (नामकर्म से रहित) हैं। निष्काम ऋषि भी उनका ध्यान करते हैं। वे परमानन्द के सुन्दर धाम हैं ॥ 48 ॥

परम पुनीत पुराण, पुरुषोत्तम परवीण पति ।
परम ब्रह्म जगभाण, परिपूरण द्युति अगम मति ॥ 49 ॥

उपयोगी अतिभाव, उपमा सिन्धु अगाध गति ।
तीन भवन कौ राव, भवजल नाव प्रभाव अति ॥ 50 ॥

व्यापक विश्नु जिनेस, जिश्नु पूज्य जिनराय जो ।
ज्ञायक होय असेस, अतिविसेस मुनिराय जो ॥ 51 ॥

है अकाय गुणकाय, रहित उपाय उपेय जो ।
महामुक्ति पद दाय, अप्रमेय आदेय जो ॥ 52 ॥

अति प्रसिद्ध परतक्ष, परमेसुर परमात्मा ।
परमजौति निरपक्ष, लक्ष अलक्ष महात्मा ॥ 53 ॥

परमेष्ठी परदेव, सो निजदेव अलेस है ।
सब देवन कौ देव, महादेव भुवनेस है ॥ 54 ॥

हरि हर ईसुर सोय, जिनपति जगपति श्रीपती ।
तमहर भवहर होय, दुखहर दालिद-हर जती ॥ 55 ॥

जगनायक जगजान, आप विनायक दतगुर ।
धीर वीर निरमान, अतिकृतज्ञ धर्मज्ञ धुर ॥ 56 ॥

जो जिनेन्द्र जोगीन्द्र, इन्द्र नरेन्द्र फणीन्द्र पति ।
ध्यावैं सब अहमिन्द्र, महामुनीन्द्र महान गति ॥ 57 ॥

आदिनाथ जगनाथ, त्रिभुवन नाथ अनाथ जो ।
अचल नाथ गुणनाथ, जो..... ॥ 58 ॥

वे परम पवित्र हैं, पुराण (प्राचीन) हैं, पुरुषोत्तम हैं, प्रवीण हैं, प्रवीणों के भी स्वामी हैं, परमब्रह्म हैं, संसार-नाशक हैं, परिपूर्ण ज्योतिस्वरूप हैं और बुद्धि के अगम्य हैं ॥ 49 ॥

वे उपयोगी हैं, उत्कृष्ट भावों के धारक हैं, सागर के समान अगाध हैं, तीन लोक के राजा हैं और संसार-जल से पार होने के लिए अत्यन्त प्रभावशाली नौका के समान हैं ॥ 50 ॥

वे ज्ञान की अपेक्षा सर्वव्यापक होने से विष्णु हैं, जिनेश हैं, जिष्णु (विजेता) हैं, पूज्य हैं, जिनराय हैं, सम्पूर्ण ज्ञेयों के ज्ञायक हैं और अतिविशिष्ट मुनिराज भी हैं ॥ 51 ॥

यद्यपि वे शरीर-रहित हैं, किन्तु ज्ञानगुणरूपी शरीर से सहित भी हैं। वे उपाय-उपेय भावों से रहित हैं, महामोक्ष पद को देनेवाले हैं, अप्रमेय हैं और उपादेय हैं ॥ 52 ॥

वे अत्यन्त प्रसिद्ध हैं, प्रत्यक्ष हैं, परमेश्वर हैं, परमात्मा हैं, परमज्योतिस्वरूप हैं, निरपेक्ष हैं, लक्ष्य हैं, अलक्ष्य हैं और महात्मा हैं ॥ 53 ॥

वे परमेष्ठी हैं, परमदेव हैं, परिपूर्ण आत्मदेव हैं, सब देवों के देव हैं, महादेव हैं और सम्पूर्ण लोक के स्वामी हैं ॥ 54 ॥

वे ही हरि हैं, हर हैं, ईश्वर हैं, जिनपति हैं, जगपति हैं, श्रीपति हैं। वे सर्व अंधकार को दूर करने वाले हैं, संसार का नाश करने वाले हैं, सर्व दुःखों को दूर करने वाले हैं और सर्व दरिद्रता को भी दूर करने वाले बड़े महा यति हैं ॥ 55 ॥

वे जगत् के नायक हैं, जगत के ज्ञाता हैं, स्वयं ही अपने विनायक हैं, गुरु हैं, धीर हैं, वीर हैं, निर्मान हैं, अत्यन्त कृतज्ञ हैं, धर्मज्ञ हैं और धुरन्धर हैं ॥ 56 ॥

वे जिनेन्द्र और योगी भी हैं। इन्द्र, नरेन्द्र, फणीन्द्र, अहमिन्द्र आदि सभी उनका ध्यान करते हैं। वे महामुनीन्द्र हैं, महाज्ञानी हैं ॥ 57 ॥

वे आदिनाथ हैं, जगन्नाथ हैं, तीन भुवन के नाथ हैं, अनाथ हैं (उनका अन्य कोई नाथ नहीं है), अचलनाथ हैं और गुणनाथ हैं..... ॥ 58 ॥

वचनातीत अतीत, अति अभीत जगजीत जो।
मायाचार वितीत, ऋषभ ऋषीस अजीत जो॥ 59 ॥

संभव विभव अनंत, अनय अनय आनंद मय।
अभिनंदन जगकंत, सुमति पद्मप्रभ अज अभय॥ 60 ॥

श्रीसुपास प्रभु चंद, सुविधि सुशीतल श्रेय है।
वासुपूज्य शिवकंद, विकल अनंत सुप्रेय है॥ 61 ॥

धर्मरूप जगभूष, धर्मनाथ धर्मज्ञ ओ।
शांति प्रशांति सरूप, दयावंत मर्मज्ञ जो॥ 62 ॥

किरम कीट कुंश्वादि, सब परि करुणा करण जो।
कुंथनाथ करमादि, हरै रहित भवभ्रमण जो॥ 63 ॥

रज-वर्जित अरनाथ, महामल्ल मुनिसुव्रता।
नमिनाथौ नरनाथ, जाहि लहैं नहिं अनृता॥ 64 ॥

यम-नियमादिक ईस, नेमीसुर जोगीसुरा।
ध्यावैं जाहि मुनीस, सेवैं चरण सुरेसुरा॥ 65 ॥

पास निकट को नाँव, निकट विराजै सर्व कै।
उर सालें अतिधाम, क्रोध लोभ छल गर्व के॥ 66 ॥

जैसे पारस पाय, लोह होय कंचन महा।
तैसे पारस ध्याय, भव्य जीव शिवपद लहा॥ 67 ॥

महावीर अतिवीर, वर्द्धमान भगवान जो।
गुणसमुद्र गंभीर, सनमति है निरवान जो॥ 68 ॥

वे वचनातीत हैं — वचन से अत्यन्त दूर हैं, निर्भय हैं, जगत-विजयी हैं, मायाचार से सर्वथा रहित हैं, ऋषियों के स्वामी ऋषभ¹ हैं और अजित² भी हैं ॥ 59 ॥

वे अनन्त वैभव वाले और अनन्त आनन्दमय संभव³ हैं। वे जगत के स्वामी अभिनन्दन⁴ हैं, सुमति⁵ हैं, अज व अभय पद्मप्रभ⁶ हैं ॥ 60 ॥

वे सुपार्श्व⁷ हैं, चन्द्रप्रभ⁸ हैं। सुविधि भी (पुष्पदन्त)⁹ हैं, शीतल¹⁰ हैं, श्रेयांस¹¹ हैं, शिवकन्द वासुपूज्य¹² हैं, विमल¹³ है, और अनन्त¹⁴ हैं ॥ 61 ॥

वे जगत के भूप, धर्मस्वरूप एवं धर्मज्ञ धर्मनाथ¹⁵ हैं। वे परम शांतिस्वरूप, दयावान और मर्मज्ञ शांतिनाथ¹⁶ हैं ॥ 62 ॥

वे कृमि, कीट, कुंथु आदि सब जीवों पर करुणा करनेवाले तथा समस्त कर्मों का नाश करके संसार-भ्रमण को मिटाने वाले कुंथुनाथ हैं¹⁷ ॥ 63 ॥

वे समस्त कर्मरूपी रज से रहित अरनाथ¹⁸ हैं, महान मल्लिनाथ¹⁹ हैं, मुनिसुव्रत²⁰ हैं और समस्त मनुष्यों के स्वामी ऐसे नमिनाथ²¹ भी हैं जिन्हें झूठे (मिथ्यादृष्टि) लोग नहीं प्राप्त कर सकते ॥ 64 ॥

वे यम, नियम आदि के स्वामी ऐसे नेमीश्वर²² हैं, योगीश्वर हैं, जिन्हें बड़े-बड़े मुनि भी ध्याते हैं और जिनके चरणों की सेवा सुर व असुर भी करते हैं ॥ 65 ॥

वे पार्श्व²³ भी हैं। पार्श्व का अर्थ होता है— निकट। अर्थात् वे सबके निकट रहते हैं, हृदय में ही विराजते हैं। वे क्रोध, मान, माया, लोभ से अत्यन्त दूर रहते हैं ॥ 66 ॥

जिसप्रकार पारस को पाकर लोहा कंचन हो जाता है, उसीप्रकार पार्श्व भगवान का ध्यान करके जीव मोक्ष पद की प्राप्ति कर लेते हैं ॥ 67 ॥

वे महावीर²⁴ हैं, अतिवीर हैं, वर्द्धमान हैं और गुणों के गम्भीर समुद्र ऐसे परममुक्त सन्मति हैं ॥ 68 ॥

श्रीमंधर धरणीस, युगंधर बाहु सुबाहु जो ।
श्री संजात जतीस, करै सही निरवाह जो ॥ 69 ॥

स्वयंप्रभू परतक्ष, ऋषभानन ऋषिराव जौ ।
कीर्ति अनंत अलक्ष, दक्ष दयामय भाव जो ॥ 70 ॥

सूरिप्रभु समरूप, सेवै सूरि सबै सदा ।
कीर्ति विसाल अनूप, जाकै मोह न वसु मदा ॥ 71 ॥

ध्यान वज्रधर धीर, ध्यावैं वज्रधरा सबै ।
चंद्रानन हर पीर, चंद्रबाहु लखि अघ दबै ॥ 72 ॥

भजो भुयंगम देव, सेवौ ईसुर साँमिया ।
करै सुरासुर सेव, नियम प्रभु उर आनिया ॥ 73 ॥

वीरसेण गुणसेण, महाभद्र कल्याण कर ।
धारक क्षपक श्रेणि, ध्यावैं जाहि जतीसवर ॥ 74 ॥

जस गावै सुर नाग, भज्याँ देवजस पास है ।
अजित वीर जितराग, जा करि जीव विदेह है ॥ 75 ॥

शिव कल्याण सुरुप, संकर सुखकर दुखहरा ।
ईस निरीस निरूप, परिपूरण परमेश्वरा ॥ 76 ॥

अखै अखंडित भाव, दरसण ज्ञान चरित्र धर ।
अतुल अनंत प्रभाव, लोकालोक प्रकास कर ॥ 77 ॥

महामहेस जिनेस, माया मोह प्रचार हर ।
लायक ललित विसेस, परम ब्रह्म आकार नर ॥ 78 ॥

वे पृथ्वी के स्वामी सीमन्धर¹ हैं, युगमन्धर² हैं, बाहु³ हैं, सुबाहु⁴ हैं और संजात⁵ भी हैं जो सब जीवों का सच्चा पालन करते हैं ॥ 69 ॥

वे प्रत्यक्ष स्वयंप्रभ⁶ हैं। ऋषियों के स्वामी ऋषभानन⁷ हैं, और दयामय भावों में दक्ष अनन्तकीर्ति⁸ भी हैं ॥ 70 ॥

वे सूरिप्रभ⁹ हैं। समस्त सूरि अर्थात् आचार्य-उपाध्याय उनका सदा सेवन करते हैं। वे ऐसे अनुपम विशालकीर्ति हैं, जिनके न कोई मोह है और न ही कोई अष्ट मद आदि ॥ 71 ॥

वे धीरतापूर्वक उत्कृष्ट ध्यान को धारण करनेवाले ऐसे वज्रधर¹¹ हैं, जिनका सभी वज्रधर (इन्द्र) ध्यान करते हैं। वे सर्वदुःख दूर करनेवाले चन्द्रानन¹² हैं और ऐसे चन्द्रबाहु¹³ भी हैं जिन्हें देखकर सम्पूर्ण पाप दूर भाग जाते हैं ॥ 72 ॥

वे भुजंगम¹⁴ हैं, वे ईश्वर हैं¹⁵ और वे नेमिप्रभ¹⁶ भी हैं। समस्त सुर और असुर भी उनकी सेवा करते हैं। हे भाई ! तुम भी उनका भजन करो, उनकी सेवा करो और उन्हें अपने हृदय में धारण करो ॥ 73 ॥

वे गुणों के स्वामी वीरसेन¹⁷ हैं, और कल्याणकारी महाभद्र¹⁸ हैं, बड़े-बड़े क्षपक श्रेणी के धारी यतीश्वर भी उनका ध्यान करते हैं ॥ 74 ॥

वे ऐसे देवयश¹⁹ हैं जिनका यश सुर और नाग भी गाते हैं। वे ऐसे रागविजयी अजितवीर्य²⁰ भी हैं, जिनके ध्यान से जीव 'विदेह' हो जाता है ॥ 75 ॥

वे शिव हैं, कल्याणस्वरूप हैं, शंकर हैं, सुखकर एवं दुःखहर हैं, ईश्वर हैं, निरीश्वर हैं (उनका अन्य कोई ईश्वर नहीं है), रूप-रहित हैं — अरूपी हैं, परिपूर्ण हैं और परमेश्वर हैं ॥ 76 ॥

वे अक्षय हैं, अखंडित हैं, दर्शन-ज्ञान-चारित्र आदि उत्तम भावों के धारक हैं, अतुलनीय हैं, अनंत प्रभावशाली हैं अथवा अनन्त उत्कृष्ट भावों के धारक हैं और सम्पूर्ण लोकालोक को प्रकाशित करनेवाले हैं ॥ 77 ॥

वे महा-महेश हैं, जिनेश हैं, माया-मोह के प्रसार को समाप्त करनेवाले हैं, परमयोग्य हैं, सुन्दर हैं, विशेष हैं, परमब्रह्म हैं और पुरुषाकार हैं ॥ 78 ॥

1 से 20, ये विदेह क्षेत्र के विद्यमान बीस तीर्थकरों के नाम हैं।

चेतन ज्ञान सरीर, सदानंद सद्रूप गुर।
हरि नरहरि असरीर, रटैं नाम नर सुर असुर ॥ 79 ॥

केवल लोचन लाल, लोक ललाम लसै महा।
जीव जाति रिछपाल, करम काष्ठ सब ही दहा ॥ 80 ॥

ज्ञायक नायक धीर, है त्रिकाल दरसी प्रभु।
वरदायक वर वीर, वर्णातीत महाविभू ॥ 81 ॥

सब माँही भरपूर, सब तैं न्यारे नरपती।
अष्ट करम चकचूर, सूर सवल दे सिवगती ॥ 82 ॥

भावस्वरूप अरूप, अक्षय अव्यय अज अजर।
दयावंत अतिरूप, श्री भगवान परातपर ॥ 83 ॥

अक्षर अक्ष वितीत, जाणि अक्षरातीत ते।
अमल अनादि अगीत, कालजीत कलबीत ते ॥ 84 ॥

जगत-सीस जगदीस, जगत-सिरोमणि जस अती।
मोह न राग न रीस, ज्ञानी ध्यानी मुनि मती ॥ 85 ॥

अधिप अधीस अनीस, लोकेसुर विश्वेसुरो।
आराधैं धरणीस, सेवैं पाँय सुरेसुरो ॥ 86 ॥

मंडित महा प्रभाव, खंडित सर्व विभाव जो।
सदा अखंड स्वभाव, सुर असुरनि कौ राव जो ॥ 87 ॥

अविगत अतिगति देव, अटल अबाधित अतुल सुख।
भवभ्रम टारण टेव, गुणधर अघहर हरणदुख ॥ 88 ॥

वे चैतन्यमय हैं, ज्ञानशरीरी हैं, सदा आनन्दमय हैं, सत्स्वरूप हैं, गुरु हैं, हरि हैं, नरहरि हैं और अशरीर हैं। मनुष्य, सुर एवं असुर भी उनका सदैव नाम जपते हैं। वे केवलज्ञानरूपी ऐसी सुन्दर चक्षु को धारण करनेवाले हैं जिसमें सम्पूर्ण विश्व भलीप्रकार दिखाई देता है। वे सम्पूर्ण जीवजाति के रक्षक हैं। उन्होंने अपने समस्त कर्मरूपी ईधन को पूरी तरह जला दिया है ॥ 79-80 ॥

वे ज्ञायक हैं, नायक (प्रधान नेता) हैं, धीर हैं और तीनों कालों को भलीप्रकार जानने वाले हैं। वे उत्तम वर को देने वाले हैं, वीर हैं, वर्णातीत (वर्ण-रहित/अरूपी) हैं और महाविभु (सर्वव्यापक) हैं ॥ 81 ॥

वे सब में व्याप्त रहनेवाले हैं, फिर भी सबसे न्यारे हैं। उन्होंने अष्टकर्मों का सर्वथा नाश कर दिया है। वे अत्यन्त शूरवीर और शक्तिशाली हैं। वे मोक्षप्रदान करनेवाले भी हैं ॥ 82 ॥

वे भावस्वरूप (सत्तास्वरूप) हैं, अरूपी हैं, अक्षय हैं, अव्यय हैं, अज (जन्म-रहित) हैं, अजर (जरा-रहित) हैं, दयावान हैं, अत्यन्त सुन्दर हैं, श्रीभगवान हैं और उत्कृष्ट से भी उत्कृष्ट — सर्वोत्कृष्ट हैं ॥ 83 ॥

वे अक्षर (कभी नष्ट न होने वाले) हैं, इन्द्रियों से अतीत हैं — अतीन्द्रिय हैं, अक्षरातीत (शब्द अगोचर) हैं, अमल हैं, अनादि हैं, अगीत (जिसके गुणों का कोई गान नहीं कर सका — ऐसे) हैं, कालजीत (मृत्यु-विजयी/अमर) हैं और शरीर से रहित हैं ॥ 84 ॥

वे जगत् के मुकुट हैं, जगदीश हैं, जगत्-शिरोमणि हैं और अत्यन्त यशस्वी हैं। उनके कोई मोह-राग-द्वेष नहीं है। वे परमज्ञानी-ध्यानी और मुनि हैं ॥ 85 ॥

वे अधिप हैं, अधीश हैं, अनीश हैं — उनका कोई अन्य ईश्वर नहीं है। वे लोकेश्वर हैं, विश्वेश्वर हैं। बड़े-बड़े पृथ्वीपति भी उनकी आराधना करते हैं। सुर और असुर भी उनके चरणों की सेवा करते हैं ॥ 86 ॥

वे उत्कृष्ट भावों से शोभायमान हैं और समस्त विभावों से पूर्णतया रहित हैं। वे सदा अपने एक अखण्ड स्वभाव को धारण करते हैं। वे सुर और असुरों के भी स्वामी हैं ॥ 87 ॥

वे अविगत हैं, अति-गति हैं, देव हैं, अटल हैं, अव्याबाध और अतुलनीय (अनुपम) सुख के धारक हैं। वे संसार-भ्रमण को मिटाने वाले हैं, अनन्त गुणों को धारण करने वाले हैं, सर्व पापों को दूर करनेवाले हैं और समस्त दुःखों का विनाश करनेवाले हैं ॥ 88 ॥

सकल कला परवीन, दीननि कौ आधार है।
जामैं मुनि लवलीन, करै सोय भवपार है ॥ 89 ॥

जे असुद्ध गुन होय, तिनसों रहित गुरु कहै।
सदा मिल्यो गुन सोहि, जाहिं गुनी अति ही चहै ॥ 90 ॥

जौ प्रवचन कौ सार, समयसार ततसार जो।
अस्तिकाय परकार, पंच परूपनहार जो ॥ 91 ॥

सकल त्रिभंगी भास, सप्तभंग परकासको।
धारे तत्त्व-विलास, परमारथ प्रतिभासको ॥ 92 ॥

अभू स्वयंभू सात, धारक ध्रुवता-व्यय-प्रभव।
निरमल कमला कांत, पावन भावन भाव भव ॥ 93 ॥

सर्व सुरेसुर नाथ, सर्व नरेसुर नायकौ।
सर्वेसुर सब साथि, सर्व पदारथ ज्ञायकौ ॥ 94 ॥

सुगत सुगतिदातार, सुमति सुमति दिढ धारकौ।
कुमति कुमति क्षयकार, हिंसा रूप निवारकौ ॥ 95 ॥

बुद्ध बुद्धि के पार, परम सुद्धता कारणो।
ऋद्धि सिद्धि भंडार, जन्म जरा मर हारणो ॥ 96 ॥

जग भूषण निरदाव, नगन दिगंबर जोग थथ।
वर्जित सकल विभाव, महाभाव महिमा अकथ ॥ 97 ॥

साधु लहै प्रतिबोध, तजै दुष्ट सब दुष्टता।
त्यागे अबुध अबोध, गहै छीन अति पुष्टता ॥ 98 ॥

वे सकल कलाओं में प्रवीण हैं, दीनों के आधार हैं, और बड़े-बड़े मुनि भी उनमें लीन रहते हैं, क्योंकि वे ही संसार से पार करनेवाले हैं ॥ 89 ॥

श्रीगुरु कहते हैं कि वे समस्त अशुद्ध भावों से रहित हैं और शुद्ध भावों से सहित हैं। यही कारण है कि गुणवान व्यक्ति उनकी अपने हृदय में बड़ी अभिलाषा रखते हैं ॥ 90 ॥

वे उसी परमार्थ तत्त्व में विलास करते हैं और उसी परमार्थ तत्त्व को प्रकाशित भी करते हैं; जो 'प्रवचन का सार' है, 'समयसार' का सार है, 'पंचास्तिकाय' का भी मुख्य प्रतिपाद्य है, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य रूप त्रिभंगी से ज्ञात होता है, और अस्ति-नास्ति आदि सप्तभंगों में प्रकाशित है ॥ 91-92 ॥

वे अभू हैं, स्वयंभू हैं, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य के धारक हैं, निर्मलतारूपी लक्ष्मी के पति हैं और पवित्र भावों की भावना प्रदान करनेवाले हैं ॥ 93 ॥

वे समस्त सुर व असुरों के स्वामी हैं, सर्व नरेशों के नायक हैं तथा वस्तुतः सब जीवों के ही स्वामी हैं। वे सम्पूर्ण पदार्थों के ज्ञायक भी हैं ॥ 94 ॥

वे सुगति को देने वाले होने से 'सुगत' हैं और दृढ़ सद्बुद्धि को धारण करने वाले एवं हिंसादिरूप कुमति को नष्ट करने वाले होने से 'सुमति' हैं ॥ 95 ॥

वे बुद्धि के पार होने से बुद्ध हैं, परमशुद्धता के कारण हैं, ऋद्धि-सिद्धि के भण्डार हैं और जन्म-मरण का क्षय करनेवाले हैं ॥ 96 ॥

वे जगत् के शाश्वत आभूषण हैं, नग्न दिगम्बर हैं, योग-लीन हैं, सर्व विभावों से रहित हैं, उत्कृष्ट भावों से युक्त हैं और उनकी महिमा वचनों से कही नहीं जा सकती है ॥ 97 ॥

उनकी उपासना करके सज्जन पुरुष प्रतिबुद्धता प्राप्त करते हैं, दुष्ट सर्वदुष्टता का त्याग करते हैं, अज्ञानी जीव अपने अज्ञान का त्याग करते हैं और क्षीण पुरुष पौष्टिकता को प्राप्त करते हैं ॥ 98 ॥

अतिसय धरें अनंत, प्रगट प्रबुद्ध प्रबोध कर।
गणधर देव जपंत, परम रमा वर धरमधर ॥ 99 ॥

तपसी सेवै चरण, तारण तरण त्रिलोकपति।
अमरण असरण सरण, अवरण वर्ण प्रताप अति ॥ 100 ॥

तीर्थकर श्री पूजि, भट्टारक भवतारकौ।
नहिं मुनिगण-सा दूजि, परम महाव्रत धारकौ ॥ 101 ॥

शक्ति अनंत अपार, गुण अनंत अरिहंत के।
कहत न आवै पार, नाम अनंत महंत के ॥ 102 ॥

है जिनवर के नाम, नहीं आन के नाम ए।
बिन केवल परिणाम, नहिं लहिए गुणग्राम ए ॥ 103 ॥

सुनो और इक बात, लोग कहै लिछमी त्रिया।
श्रीपति पुरुष कहात, तिनकों सो अति ही प्रिया ॥ 104 ॥

ऐसी भाषें तेह, जिन नहिं समझ्यौ जैनमत।
पुरुष न नारि कदेहि, द्रव्य र परणति एक तत ॥ 105 ॥

श्री सत्ता कौ नाव, जो सुशक्ति है तत्त्व की।
गुणरूपा गुणधाम, कारण है अस्तित्व की ॥ 106 ॥

स्वाभाविक परजाय, द्रव्य थकी नहिं दूसरी।
सदा वस्तु की काय, काय रहित परमेस्वरी ॥ 107 ॥

ताके नाम अनंत, गावें श्रीगुर गणपती।
जिन नामें अरहंत, तिन ही नामें अरहती ॥ 108 ॥

वे अनंत अतिशयों को धारण करते हैं, वे स्वयं तो अतिप्रबुद्ध हैं ही, दूसरों को भी प्रबुद्ध करते हैं। गणधरदेव भी उनका जाप करते हैं। वे उत्कृष्ट लक्ष्मी के पति हैं और श्रेष्ठ धर्म के धारक हैं ॥ 99 ॥

बड़े-बड़े तपस्वी उनके चरणों की सेवा करते हैं। वे तारण-तरण हैं, त्रिलोकपति हैं, अमर हैं और अशरणों के शरण हैं। वे अवर्ण हैं और अत्यन्त प्रतापी वर्ण के भी हैं ॥ 100 ॥

वे तीर्थकर हैं, श्री-युक्त हैं, पूज्य हैं, भट्टारक हैं एवं भव-तारक भी हैं। वे परममहाव्रत के धारक ऐसे महामुनि भी हैं कि उन-जैसा दुनिया में अन्य कोई नहीं है ॥ 101 ॥

इस प्रकार अरिहंत देव में अनंत शक्तियाँ हैं, अनंत गुण हैं और उनके अनंत नाम भी हैं जिनका कथन करते हुए कभी अंत नहीं आ सकता ॥ 102 ॥

ये सभी अनंत नाम एक अरिहंत के ही हैं, अरिहंत के अतिरिक्त अन्य किसी के नहीं हैं। तथा ये अनंत नाम उनमें विद्यमान गुणसमूह के कारण ही हैं, अतः इन्हें केवलज्ञान प्राप्त किये बिना नहीं प्राप्त किया जा सकता है ॥ 103 ॥

और सुनिये ! लोग कहते हैं कि लक्ष्मी एक स्त्री का नाम है और श्रीपति उसके पति का नाम है, वह प्रियतम है और वह प्रिया है; परन्तु ऐसा कहनेवाले वास्तव में वे ही हैं जिन्होंने जैनदर्शन को जरा भी नहीं समझा है, क्योंकि लक्ष्मी एवं श्रीपति कोई स्त्री एवं पुरुष नहीं है, अपितु एक ही वस्तु के द्रव्य एवं पर्याय नामक दो अंश हैं ॥ 104-105 ॥

वस्तुतः श्री सत्ता का ही दूसरा नाम है, जो वस्तु की स्वशक्ति है, गुणरूप है, अनंतगुणों का आधार है और वस्तु के अस्तित्व का कारण है ॥ 106 ॥

वह (श्री या लक्ष्मी) द्रव्य की ही स्वाभाविक पर्याय है, कोई अन्य (स्त्री आदि) नहीं है। वह तो वस्तु की शाश्वत काया है, जो इस लौकिक काया से पृथक् एवं पारमेश्वरी है ॥ 107 ॥

श्रीगुरु गणधरदेव उस श्री या सत्ता का भी अनंत नामों से गुणगान करते हैं। जितने अरिहंत के नाम हैं, उतने ही इस श्री या सत्ता के भी नाम हैं। वे अर्हत् हैं तो यह अर्हती है ॥ 108 ॥

सत्ता द्रव्य अभेद, वस्तु एक ही जानिए।
लखिये मात्रा-भेद, अक्षर-भेद र मानिये ॥ 109 ॥

सिद्ध सिद्धि नहिं भेद, बुद्ध बुद्धि नहिं अंतरा।
राम रमा जु अभेद, यों सब नाम निरंतरा ॥ 110 ॥

पद्मा पद्म न दोय, वस्तु वस्तुता एक है।
अस्ति अस्तित्ता सोय, विज्ञ विज्ञता द्वै न है ॥ 111 ॥

शुद्ध शुद्धता एक, भगवत सत्ता भगवती।
नहिं भव भवा अनेक, शिव ही माँहि शिवा सती ॥ 112 ॥

एक एकता सोय, वह अनेक वा नेकता।
धीर धीरता दोय, लखिवो सो अविवेकता ॥ 113 ॥

प्रभु जिनेन्द्र जगजोति, शक्ति जिनेन्द्रा गुणभरी।
और रूप नहिं होत, जिनवर सत्ता जिनवरी ॥ 114 ॥

आप नाम भगवान, शक्ति भवानी परिणती।
प्रभु ईसुर गुणवान, शक्ति ईसुरी गुणवती ॥ 115 ॥

दया दयाल न भेद, नित्य नित्यता भेद को।
विमला विमल अभेद, गावै निजरस-वेदको ॥ 116 ॥

व्यक्त रूप जिननाथ, व्यक्ति रूप जिनशक्ति है।
तजै न जिन कौ साथ, एक भाव अनिरुक्त है ॥ 117 ॥

जीव द्रव्य कै माँहि, बसै शक्ति संजीवनी।
एक ही भाव लखाँहि, मूरति दोय नहीं बनी ॥ 118 ॥

वस्तुतः सत्ता और द्रव्य अभेद ही हैं, उन्हें एक ही वस्तु जानना चाहिए। उनमें केवल अक्षर-मात्रा (शब्दमात्र) का ही भेद है। तात्पर्य यह है कि सत्ता और द्रव्य में वस्तु-भेद नहीं है, मात्र शब्द-भेद है ॥ 109 ॥

जिसप्रकार सिद्ध और सिद्धि में कोई भेद नहीं है, वे दोनों अभेद ही हैं; बुद्ध और बुद्धि में कोई भेद नहीं है, वे दोनों अभेद ही हैं, राम और रमा में कोई भेद नहीं है, वे दोनों अभेद ही हैं; उसीप्रकार द्रव्य और सत्ता में भी कोई भेद नहीं है, वे दोनों अभेद ही हैं। इसीप्रकार और भी अनंत नामों के सम्बन्ध में जानना चाहिए ॥ 110 ॥

जिसप्रकार पद्मा और पद्म दो नहीं हैं, उसीप्रकार वस्तु और वस्तुता भी दो नहीं हैं, एक ही हैं। तथा उसी को अस्ति और अस्तित्ता (अस्तित्व) भी कहते हैं। वे दोनों विज्ञ और विज्ञता की भाँति एक ही हैं, दो पृथक्-पृथक् वस्तु नहीं हैं ॥ 111 ॥

जिसप्रकार शुद्ध और शुद्धता दो पृथक्-पृथक् वस्तु नहीं हैं, एक ही वस्तु हैं; उसीप्रकार द्रव्य और सत्ता दो पृथक्-पृथक् वस्तु नहीं हैं, एक ही वस्तु है। यदि द्रव्य भगवान है तो सत्ता भगवती है। यदि द्रव्य भव (सत्) है तो सत्ता भवा (सत्ता) है। वे दोनों दो अलग-अलग वस्तु नहीं हैं। शिव में ही शिवा सती रहती है ॥ 112 ॥

इसीप्रकार द्रव्य एक है और सत्ता एकता है। द्रव्य अनेक है और सत्ता अनेकता है। द्रव्य धीर है और सत्ता धीरता है। इन सब को दो वस्तु पृथक्-पृथक् मानना अविवेकता है ॥ 113 ॥

द्रव्य जगत्प्रकाशी जिनेन्द्र हैं और सत्ता उनकी गुणगंभीर शक्ति का नाम है जिसे जिनेन्द्रा भी कह सकते हैं। द्रव्य जिनवर है और सत्ता जिनवरी है। बस, ऐसा ही वस्तुस्वरूप है, अन्य नहीं ॥ 114 ॥

द्रव्य का नाम भगवान है और उसकी शक्ति या परिणति का ही नाम भवानी है। द्रव्य का नाम ईश्वर है, गुणवान है और उसकी शक्ति का नाम ईश्वरी है, गुणवती है ॥ 115 ॥

दया और दयाल में कोई भेद नहीं है, नित्य और नित्यता में कोई भेद नहीं है, विमल और विमला में भी कोई भेद नहीं है। ये अभेद एक ही वस्तु है — ऐसा आत्मरस के अनुभवी कहते हैं ॥ 116 ॥

जिनदेव ही व्यक्त हैं और जिनशक्ति ही व्यक्ति है। यह जिनशक्ति रूप व्यक्ति जिनदेव का साथ कभी नहीं छोड़ती है। तथा वस्तुतः ये दोनों एक ही वस्तु हैं ॥ 117 ॥

जीवद्रव्य में ही संजीवनी शक्ति निवास करती है। द्रव्य और पर्याय दोनों एक ही वस्तु होते हैं, दो नहीं ॥ 118 ॥

जैसो जो है द्रव्य, तैसै ही ता परिणती।
या विधि जानौं सर्व, कोऊ द्रव्य न बिनु छती॥ 119 ॥

पंच अचेतन दर्व, तिन में शक्ति अचेतना।
जीव सचेतन सर्व, तिन में शक्ति सचेतना॥ 120 ॥

पुद्गल मूरत वस्तु, ताकी सत्ता मूरती।
और अमूरत वस्तु, तिनकी शक्ति अमूरती॥ 121 ॥

संसारस्व विभाव, तिनकी शक्ति विभावता।
सिद्ध सदा अविभाव, तिनकी शक्ति सुभावता॥ 122 ॥

जगवासी जन मूढ, तिनकी परणिति मूढता।
सिद्ध स्वभावारूढ, तिनकी शक्ति अमूढता॥ 123 ॥

द्रव्य सुगुण परजाय, भाव त्रई की एकता।
और न कोय उपाय, ज्ञान उपाय विवेकता॥ 124 ॥

द्रव्य सुचेतन जान, चेतनत्व है निजगुणा।
शक्ति चेतना मानि, इनमें भेद नहीं सुणा॥ 125 ॥

द्रव्य अमूरति होय, गुण अमूरतत है सही।
परजय और न कोय, नाम अमूरतता कही॥ 126 ॥

जैसो द्रव्य सुभाव, तैसेइ गुण-परजया।
एक ही अतुल प्रभाव, तीन भाव में फीपरतया॥ 127 ॥

पंच द्रव्य जड़ रूप, पुद्गल धर्म अधर्म नभ।
काल सहित पररूप, तिन में पुद्गल सुभ असुभ॥ 128 ॥

जो द्रव्य जैसा है, उसकी पर्याय भी वैसी ही होती है। कोई भी द्रव्य इसका अपवाद नहीं है। सभी द्रव्यों को इसी नियम से परिणमन करता हुआ जानना चाहिए ॥ 119 ॥

पाँच द्रव्य (पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल) अचेतन हैं, अतः उनकी शक्ति अचेतन है तथा सभी जीवद्रव्य चेतन हैं, अतः उनकी शक्ति सचेतन है ॥ 120 ॥

पुद्गल द्रव्य मूर्तिक वस्तु है, अतः उसकी शक्ति भी मूर्तिक है। तथा अन्य सर्वद्रव्य अमूर्तिक हैं, अतः उनकी शक्ति अमूर्तिक है ॥ 121 ॥

संसारी जीव विकारी हैं, अतः उनकी शक्ति विभावरूप है और सिद्ध जीव सदा अविकारी हैं, अतः उनकी शक्ति स्वभावरूप है ॥ 122 ॥

संसारी जीव मूढ़ हैं, अतः उनकी परिणति भी मूढ़ता रूप हो रही है और सिद्ध जीव सदा स्वभाव में लीन हैं, अतः उनकी शक्ति मूढ़ता-रहित है ॥ 123 ॥

द्रव्य, गुण और पर्याय — इन तीनों की एकता का ही नाम पदार्थ, द्रव्य या वस्तु है। और इसे समझने का एकमात्र उपाय ज्ञान या विवेक ही है, अन्य कोई नहीं ॥ 124 ॥

यथा — चेतन तो द्रव्य है, चेतनत्व उसका अपना गुण है और चेतना ही उसकी शक्ति (पर्याय) है; परन्तु इन तीनों में वस्तुभेद नहीं है ॥ 125 ॥

चेतन द्रव्य अमूर्तिक है, उसके गुण भी अमूर्तिक ही हैं तथा उसकी पर्याय भी अमूर्तिक ही है; अन्य कोई नहीं ॥ 126 ॥

जिस द्रव्य का जैसा स्वभाव होता है, उसके गुण और पर्याय भी वैसे ही होते हैं। द्रव्य, गुण और पर्याय — तीनों का एक ही अनुपम प्रभाव होता है। उनमें परस्पर पृथक्ता नहीं होती ॥ 127 ॥

एक चेतन द्रव्य ही स्वद्रव्य है और शेष पाँचों द्रव्य परद्रव्य हैं, जो जड़रूप या अचेतनरूप भी हैं। उनके नाम हैं : पुद्गलद्रव्य, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और कालद्रव्य। इनमें से पुद्गलद्रव्य दो प्रकार का होता है : शुद्ध और अशुद्ध ॥ 128 ॥

अणु मिल्या है खंध, खंध बिछुड़ अणुता धरै ।
विविध प्रकारें बंध, चेतन के पुदगल करै ॥ 129 ॥

जबै परणवै जीव, राग-दोष-मोहानि करि ।
बंधै तबै अजीव, कर्म प्रकृति परदेश परि ॥ 130 ॥

राग दोष मिट जाँहि, तब न बंध है कर्म को ।
इह ही मोक्ष उपाय, त्याग करण सब भरम कौ ॥ 131 ॥

सब कौ ज्ञाता जीव, और अग्याता जड़ सबै ।
पांचौं द्रव्य अजीव, तिन में ज्ञान न है कबै ॥ 132 ॥

पंच न कौं नहिं मुक्ति, मुक्ति होय चैतन्य कौ ।
इहै वारता व्यक्त, सम्यक् नाव न अन्य कौ ॥ 133 ॥

जीव तनें दोय भेद, सिद्ध और संसारिया ।
सिद्ध न कौं नहिं खेद, संसारी दुख भारिया ॥ 134 ॥

संसारी द्वै रूप, भव्य अभव्य अभादिया ।
चहुँ गति रूप विरूप, होय रहे तन धारिया ॥ 135 ॥

अभवि न पावैं मोख, दोषभरे भव में भ्रमें ।
लहैं न निज गुण कोष, पर परणति ही में रमें ॥ 136 ॥

भव्य हु सब ही मोख, नहिं पावैं कोयक लहै ।
गावैं गुर निरदोष, भव्य भरो भी जग रहै ॥ 137 ॥

निकट भव्य जो होय, सोई पावै सिद्ध पद ।
आठौं करम हि खोय, है विदेह तरि जगत-नद ॥ 138 ॥

अणु शुद्ध पुद्गलद्रव्य है और स्कन्ध अशुद्ध पुद्गलद्रव्य है। अणुओं के मिलने पर स्कन्ध बनता है और स्कन्धों के बिछुड़ने पर अणु रूप प्रकट होता है। यह पुद्गलद्रव्य जीवद्रव्य के विविध प्रकार से बन्ध को करता है ॥ 129 ॥

जब यह जीव मोह-राग-द्वेषादि भावों से परिणमन करता है, तब इसके कर्मरूप अजीव प्रकृति-प्रदेशादि रूप से परिणमित होकर बन्ध को प्राप्त होता है ॥ 130 ॥

और जब राग-द्वेषादि मिट जाते हैं तब कर्म का बन्ध नहीं होता। अतः राग-द्वेषादि को मिटाना ही मोक्ष का उपाय है। तथा इसी से समस्त भ्रमण या भ्रम अर्थात् अज्ञान का त्याग हो सकता है ॥ 131 ॥

जीवादि षट्द्रव्यों में से एक जीव ही सबका ज्ञाता है। शेष पाँच द्रव्य ज्ञाता नहीं हैं; क्योंकि वे जड़ हैं, अजीव हैं, उनमें कदापि ज्ञान नहीं हो सकता ॥ 132 ॥

उन पाँच अजीव द्रव्यों का मोक्ष भी नहीं होता है। मोक्ष तो केवल एक चैतन्य को ही होता है। यह एकदम सत्य और स्पष्ट बात है तथा इसे समझने का नाम ही सम्यक्त्व है। इसके अतिरिक्त अन्य किसी का नाम सम्यक्त्व नहीं है ॥ 133 ॥

जीव के दो भेद हैं : सिद्ध और संसारी। सिद्धों को कभी कोई दुःख नहीं होता, परन्तु संसारी जीव दुःख से भरे हुए हैं ॥ 134 ॥

संसारी जीव दो प्रकार के हैं : भव्य और अभव्य। वे चतुर्गतियों में नाना रूप धारण कर करके बड़े विरूप हो रहे हैं ॥ 135 ॥

उनमें अभव्य जीव कभी मोक्ष को प्राप्त नहीं करते, अपितु सदैव राग-द्वेषमय संसार में ही रहते हैं। वे कभी भी अपने आत्मिक गुणों के भण्डार को प्राप्त नहीं करते और सदैव पर-परिणति में ही रमण करते हैं ॥ 136 ॥

भव्य जीवों में भी कुछ ही भव्य मोक्ष को प्राप्त करते हैं, सब नहीं; अतः श्रीगुरु का यह वचन निर्दोष है कि यह जगत् भव्यों से भी सदैव भरा ही रहता है ॥ 137 ॥

जो जीव निकट भव्य होता है, वही अष्ट अन्त का नाश करके सिद्धपद की प्राप्ति करता है, विदेह (देह-रहित) होकर संसार-सागर से तिरता है ॥ 138 ॥

बहुरि न आवे सोय, कबहू काहू वेस में ।
परमानंदी होय, सो न जनम धर धरनि में ॥ 139 ॥

संसारी तैं सिद्ध, सिद्धन को संसार नहिं ।
सुनि दिष्टांत प्रसिद्ध, धारहु निश्चल चित महिं ॥ 140 ॥

दूध थकी है घीव, घीव न होय कदापि पय ।
जीव थकी है पीव, पीव न है जगजाल महिं ॥ 141 ॥

तंदुल सालि थकी हि, तंदुल हूवाँ सालि नहिं ।
जन होवै जिन थीह, जिन हूवाँ नहिं जनन महि ॥ 142 ॥

दल तैं धात ज होय, घात हुवाँ नहिं दल सदा ।
भव तैं सिव है सोय, शिव हूवाँ नहिं भव वसा ॥ 143 ॥

तिल तैं तेल जु होय, तेल हूवाँ फिर तिल नहीं ।
समल विमल है सोय, विमल हूवाँ नहीं मल नहीं ॥ 144 ॥

ईख थकी रस जोय, रस हूवाँ फिरि ईख कित ।
हम ही में हरि होय, हरि हूवाँ फिर नाँहि इत ॥ 145 ॥

काचै तैं परिपक्क, पाकौ काचौ है नहीं ।
या माहै नहिं सक्क, मुक्ति थकी नहिं भव मही ॥ 146 ॥

को लग कहियै मीत, अंत नहीं निकु कथन कौ ।
है करि परम नचीत, अर्थ चितारौ मथन कौ ॥ 147 ॥

(घत्ता)

इह चतुर चितारण भव जल तारण, कारण सिवपुर साध कहै ।
वाचै अर राचै मनहँ साँचै, 'दौलति' अविनासी ज लहै ॥ 148 ॥

॥ इति 'चतुर-चितारणी' पाठ सम्पूर्ण ॥

इसके बाद वह जीव कभी भी किसी भी वेश (रूप, जन्म, अवतार) में यहाँ संसार में लौटकर नहीं आता है, जन्मादि धारण नहीं करता है, अपितु सदा परमानन्द से युक्त होकर निवास करता है ॥ 139 ॥

जीव संसारी से सिद्ध तो होते हैं; परन्तु सिद्ध होने के बाद पुनः संसारी नहीं होते। इस बात को कुछ प्रसिद्ध उदाहरणों से यहाँ आगे स्पष्ट किया जाता है। हे भाई ! तुम उसे स्थिर-चित्त होकर सुनो और धारण भी करो ॥ 140 ॥

जिसप्रकार दूध से घी तो बनता है, परन्तु घी पुनः कभी दूध नहीं बनता; उसीप्रकार संसारी जीव तो परमात्मा होते हैं, परन्तु परमात्मा कभी संसार-जाल में नहीं आते ॥ 141 ॥ जिसप्रकार धान से तो चावल बनता है, परन्तु चावल होने के बाद वह पुनः धान नहीं बन सकता; उसीप्रकार जन (मनुष्य/संसारी जीव) तो जिन बन जाते हैं, परन्तु जिन होने के बाद पुनः संसार में नहीं आते ॥ 142 ॥

दल (स्वर्णपाषाण?) से घात (स्वर्ण?) तो बनता है, पर स्वर्ण होने के बाद पुनः स्वर्णपाषाण नहीं होता; उसीप्रकार संसार से मोक्ष तो होता है, पर मोक्ष होने के बाद पुनः संसार-वास नहीं होता ॥ 143 ॥ तिल से तेल तो होता है, पर तेल होने के बाद पुनः तिल नहीं होता; उसीप्रकार समल आत्मा तो विमल होता है, पर एक बार विमल होने के बाद पुनः कभी समल नहीं होता ॥ 144 ॥

गन्ने का तो रस होता है, पर रस होने के बाद पुनः गन्ना नहीं होता; उसीप्रकार संसारी जीव तो परमात्मा या सिद्ध बन सकते हैं, पर सिद्ध होने के बाद पुनः यहाँ संसार में नहीं आते ॥ 145 ॥

जिसप्रकार कच्चे से पक्का (पका) तो होता है, पर पके से फिर दुबारा कच्चा नहीं होता; उसीप्रकार मोक्ष से पुनः संसार में आगमन नहीं होता —यह यथार्थ बात है, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ 146 ॥

हे मित्र ! इसप्रकार हम और कहाँ तक कहें, कथनों (उदाहरणों) का कोई अन्त नहीं है; अतः अत्यन्त निश्चिन्त होकर ज्ञानियों के अभिप्राय का गहराई से चिन्तन करो ॥ 147 ॥

इसप्रकार यह 'चतुर-चितारण' (ग्रंथ का नाम/ज्ञानियों का चिंतन) है, जो संसार-सागर से पार उतारनेवाला है और मोक्ष का कारण है —ऐसा आचार्य कहते हैं। जो इसे पढ़ता है, समझता है और उसमें सच्चे मन से अनुराग करता है, वह अविनाशी 'दौलत' (कवि का नाम/लक्ष्मी या संपत्ति) को प्राप्त करता है ॥ 148 ॥

लीजिये, मिठाई खाइये !

मिठाई खाना सब लोग बहुत पसन्द करते हैं, परन्तु परमार्थ से मिठाई क्या है — यह कोई नहीं जानता। प्रस्तुत कृति के रचयिता महाकवि पं० दौलतराम कासलीवाल के अनुसार परमार्थ से जीव को सुखी करनेवाली मिठाई, मिश्री आदि नहीं है, अपितु कुछ और ही है। इसे ध्यान से देखिये, समझिये और फिर ऐसी मिठाई खूब खाइये—

(छप्पय)

“मिष्ट जु जिनमत सार, मिष्ट सतगुरु की सेवा।
मिष्ट व्रत दृढ़ धरन, मिष्ट भजिबौ जिनदेवा॥
मिष्ट जु साधु महंत, मिष्ट दिव्यध्वनि जिनकी।
मिष्ट मंत्र नवकार, मिष्ट चर्चा तत्त्वनि की॥
मिष्ट सांहिम्मी मिलन है, मिष्ट द्विदस तप धारिवौ।
मिष्ट जु अनशन मरण है, मिष्ट जगत कौ त्यागिबौ॥
मिष्ट विमोक्ष महान, सो हु सब जग के ऊँचे।
मिष्ट जु रतनत्रयी हु, जा बिना मुक्ति न सूचे॥
मिष्ट जु धारण ध्यान, मिष्ट मिश्री नहीं होई।
मिश्र भाव हू न मिष्ट, मिष्ट सुध सम्यक् सोई॥
मिथ्याभाव न मिष्ट कहूँ, मिष्ट जु सम्यक्ज्ञान है।
मिथ्याती ध्यावै न तुव, करहिं सम्यकी ध्यान है॥”

—अध्यात्मबारहखड़ी, छन्द म/92-93

भावार्थ— जिनेन्द्र देव का उत्तम धर्म मिष्ट है, सद्गुरु की सेवा मिष्ट है, दृढ़तापूर्वक व्रतों का पालन करना मिष्ट है, जिनदेव की पूजा मिष्ट है, साधु मिष्ट है, जिनेन्द्र देव की ध्वनि मिष्ट है, णमोकार मंत्र मिष्ट है, तत्त्वचर्चा मिष्ट है, साधर्मि-मिलन मिष्ट है, द्वादश तप धारण करना मिष्ट है, समाधिमरणपूर्वक संसार का त्याग करना मिष्ट है, सम्पूर्ण लोक के ऊपर स्थित मोक्ष मिष्ट है, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप रत्नत्रय मिष्ट है और उत्तम ध्यान का धारण करना मिष्ट है। इसके अतिरिक्त परमार्थ से मिश्री आदि पुद्गल पदार्थ एवं मिथ्यात्व-रागादि रूप कोई भी विभाव मिष्ट नहीं है।

छन्दानुक्रमणिका

अकल अमल अविकार	39	जबै परणवै	130
अक्षर अक्ष-वितीत	84	जस गावै सुर	75
अखै अखंडित भाव	77	जाति-भेद नहिं	19
अणु मिल्या है	129	जिन-आज्ञा सुख	2
अति प्रसिद्ध परतक्ष	53	जिन सेयां फल	30
अतिसय धरें अनंत	99	जीव छकाय	7
अधिप अधीस अनीस	86	जीव तनें दोय	134
अध्यापक गुरदेव	47	जीव द्रव्य के मांहि	118
अब चित चेत दयाल	8	जे असुद्ध गुन	90
अभवि न पावै मोख	136	जे केवल निज	35
अभू स्वयंभू सात	93	जे निज आतम	16
अर कैयक मत	24	जे पूरण अविकार	29
अविगत अतिगति देव	88	जे रागादिक रोग	9
आदिनाथ जगनाथ	58	जैसे पारस पाय	67
आप नाम भगवान	115	जैसो जो है	119
इह चतुर-चितारण	148	जैसो द्रव्य सुभाव	127
ईख थकी रस जोय	145	जो जिनेन्द्र जोगीन्द्र	57
उपयोगी अतिभाव	50	जो प्रवचन कौ सार	91
एक एकता सोय	113	ज्ञायक नायक धीर	81
ऐसी भाषें तेह	105	तंदुल सालि थकी	142
और सकल एकांति	34	तपसी सेवै चरण	100
काचै तैं परिपक्क	146	ताके नाम अनंत	108
किरम कीट कुंथादि	63	तिनके नाम अनंत	36
केवल लोचन लाल	80	तिलतैं तेल	144
को लग कहियै मीत	147	तीर्थकर श्री पूजि	101
गुणी गुणाधिक	42	तुम निरविकलप	13
गुन कौ पार न कोय	38	तुमरे तुम ही	14
चतुर चितार सुजांण	3	तुस मांही जौ	26
चिदानंद चिद्रूप	5	दया दयाल न भेद	116
चिंतामणी अनेक	23	दल तैं घात	143
चेतन ज्ञान सरीर	79	दल र घात	28
जगत सीस जगदीस	85	दूध थकी है	141
जगनायक जगजान	56	देवी और न कोय	15
जगभूषण निरदाव	97	द्रव्य अमूरति	126
जगवासी जन मूढ	123	द्रव्य सुगुण परजाय	124
जब तुस-जुत हो नाज	27	द्रव्य सुचेतन	125

48 : चतुर-चितारणी

धर्मरूप जगभूप	62	वाह्या अंकुर लेय	10
ध्यान वज्रधर	72	विज्ञ गुणांज्ञ	43
निकट भव्य जो	138	वीरसेण गुणसेण	74
निज सम करै	32	व्यक्तरूप जिननाथ	117
निपट निकट तर	44	व्यापक विश्नु जिनेस	51
निरमद निरमल	48	शक्ति अनंत अपार	102
निराधार आधार	40	शिव कल्याण	76
निराभरण निरदुंद	45	शुद्ध शुद्धता	112
पंच अचेतन दर्ब	120	श्रीमंधर धरणीस	69
पंच द्रव्य जड़ रूप	128	श्री सत्ता कौ नाव	106
पंच न कौं नहिं मुक्ति	133	श्री सुपास प्रभु	61
पद्मा पद्म न होय	111	संभव विभव	60
परम पुनीत पुराण	49	संसारस्व विभाव	122
परमेष्ठी परदेव	54	संसारी तें सिद्ध	140
पास निकट को नांव	66	संसारी द्वै रूप	135
पुदगल मूरत वस्तु	121	सकल कला परवीन	89
प्रणमि जिनंद मुनिंद	1	सकल त्रिभंगी भास	92
प्रभु जिनंद जग	114	सत्ता द्रव्य अभेद	109
प्रभु युगादि	41	सत्य सदासिव	46
बहुरि न आवै	139	सब कौ ज्ञाता जीव	132
बुद्ध बुद्धि के पार	96	सब मोही भरपूर	82
भजौ भुयंगम देव	73	सर्व सुरेसुर नाथ	94
भव शिव जाति न	12	साधु लहै प्रतिबोध	98
भव्य हु सब ही	137	सिद्ध अनंता एक	21
भावस्वरूप अरूप	83	सिद्ध प्रसिद्ध प्रसंत	37
भेदमती केतेक	33	सिद्ध सिद्धि नहिं	110
भ्रंग कीट कौ	31	सुगत सुगति दातार	95
मंडित महाप्रभाव	87	सुनो और इक बात	104
महामहेस जिनेस	78	सूरि प्रभु समरूप	71
महावीर अतिवीर	68	सेय ज विषय	11
मिलि करि एक	22	स्वयंप्रभू परतक्ष	70
यम-नियमादिक	65	स्वाभाविक परजाय	107
या मत हू की बात	25	हम दासा जिनदेव	18
रज-वर्जित अरनाथ	64	हम सेवक जिन	17
राग-दोस परभाव	6	हरि हर ईसुर	55
राग-दोस मिट जांहि	131	है अकाय गुणकाय	52
लोकाकास समान	4	है कैयक मत मांहि	20
वचनातीत अतीत	59	है जिनवर के नाम	103



